

DAMAGE BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178186

UNIVERSAL
LIBRARY

देव-सुकवि-सुधा

(ओङ्काधिपति हिङ्ग हाइनेस सवाई महेन्द्र महाराजा
श्रीवीरसिंहदेव-प्रदत्त सर्वप्रथम देव-पुरस्कार
की स्मृति में, महाराज के ही शुभ
नाम से, यह पुस्तकमाला देव-
पुरस्कार-विजेता द्वारा निकाली
जा रही है ।)

कुछ चुनी हुई साहित्यिक पुस्तकें

(काव्य)	
आत्मार्पण (सचित्र)	११, ११११
उषा (,,)	१११, ११११
एक दिन	११, ११११
कललता	११, ११११
किंजल्क (,,)	११, ११११
चंद्र-किरण	११, ११
जीवन-रेखाएँ	११ ११
नल नरेश (सचित्र)	१११ ११
निर्वासित के गीत	११, ११
परिमल	११, ११
ब्रज-भारती	११, ११११
भारत-गीत	११, ११
मंदार	११, ११११
मकरंद	११, ११
मधुवन	११, ११
मन की मौज	११, १११
मेघमाला	११, १११
रजकण	११, ११
रत्नावली	११, ११११
स्तुति	११, ११
शारदीया	११, ११११
साहित्य-सागर (दो भाग)	
	११, १११

(साहित्य)	
निबंध-निचय	१११, ११
प्रबंध-पद्म	११, ११
रति-रानी	१११, ११
विश्व-साहित्य	११, ११११
साहित्य-सुमन	१११, ११११
साहित्य-संदर्भ	११, ११
सौंदरानंद-महाकाव्य	११, ११
संभाषण	११, १११
हिंदी	११, ११११

(समालोचनाएँ)

कवि-कुल-कंठाभरण	१११, १११
देव और बिहारी	११, ११
निरंकुशता-निदर्शन	११, ११११
नवयुग-काव्य-विमर्श	१११, ११
नेषध-चरित-चर्चा	१११, १११
प्रसादजी के दो नाटक	११, ११
पृथ्वीराज-रासो के दो समय	१११, ११११
बिहारी-दर्शन	१११, ११
बिहारी-सुधा	१११, ११११
भवभूति	११११, ११११
हिंदी-साहित्य का इतिहास	११, १११११
हिंदी-नवरत्न	१११, ११
संक्षिप्त हिंदी-नवरत्न	११११, ११११

सब प्रकार की हिंदी-पुस्तकें मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार, ३६, लाटूश रोड, लखनऊ

देव-सुकवि-सुधा

देव-सुधा

[महाकवि देव से चारु चयन]

संग्रहकार और टीकाकार

पंडित गणेशविहारी मिश्र (स्वर्गवासी)

रावराजा रा० ब० डॉक्टर श्यामविहारी मिश्र डी० लिट्०

रा० ब० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०

—:०:—

मिलने का पता—

गंगा-ग्रंथागार

३६, लाटूश रोड

लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिन्द २१७

सं० २००२

[सादी १॥७]

प्रकाशक
श्रीदुलारेबाबू
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवाली, दिल्ली
२. प्रयाग-ग्रंथागार, १, जॉसटनगंज, प्रयाग
३. काशी-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क, काशी
४. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
५. साहित्य-रत्न-भंडार, सिविल लाईंस, आगरा
६. हिंदी-भवन, अस्पताल-रोड, लाहौर
७. एन्० एम्० भटनागर पेंड बार्स, उदयपुर
८. दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मदरास

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके वहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बैठाइए।

मुद्रक
श्रीदुलारेबाबू
अध्यक्ष गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस
- लखनऊ

निवेदन

[मेजर विध्वेश्वरीप्रसाद पांडेय बी० ए०, एल्-एल्० बी०,
भूतपूर्व चीफ मिनिस्टर ओड़िशा-राज्य]

व्रजभाषा के अनमोल पारखी, : देवजी के ही शब्दों में “लाखन खरच रचि आखर खरीदने”वाले, काव्य-मर्मज्ञ, भूपाल-श्रेष्ठ श्रीमान् एच्० एच्० श्रीसवाई महेंद्र महाराजा श्रीवीरसिंहदेव ओड़िशा-नरेश ने गत वर्ष घोषित किया था कि वह प्रतिवर्ष हिंदी के सर्वोत्कृष्ट काव्य-ग्रंथ के रचयिता को २०००) का पुरस्कार प्रदान किया करेंगे। वसन्त-सत्र के समय टीकमगढ़ में जो वार्षिक कवि-सम्मेलन होता है, उसमें इसी उदार आज्ञा के अनुसार श्रीमान् ने इस वर्ष यह २०००) का पुरस्कार ‘दुलारे-दोहावली’-ग्रंथ पर दुलारेलाल भार्गव को प्रदान किया। पुरस्कार पाते समय दुलारेलालजी ने कवि-कुल-गुरु श्रीकालिदासवाली “यशसे विजिगीषूणाम्” उक्ति के अनुसार न केवल यह धन श्रीमान् के शुभ नाम पर हिंदी-हित में लगा दिया; वरन् इसी मूल्य की पुस्तकें भी अपने पास से देकर एक पुस्तकमाला प्रकाशित करने का विचार उसी समय श्रीमान् ओड़िशा-नरेश को सेवा में प्रकट किया, जिसे श्रीमान् ने भी सहर्ष स्वीकार किया। इस संबंध में जो वक्तव्य श्रीदुलारेलालजी ने पुरस्कार प्राप्त करने पर टीकमगढ़ में दिया था, वह पुस्तक के अंत में दिया गया है। उसी के अनुसार, प्रायः एक ही मास के भीतर, ‘देव-सुकवि-सुधा’-नामक

ग्रंथमाला का यह पहला पुष्प ('देव-सुधा') हिंदी-कोविदों के लाभार्थ प्रकाशित किया जाता है। माला का नाम 'देव-सुकवि-सुधा' है ही, सो पहले इसमें 'देव-सुधा' नाम के ग्रंथ का ही गूँथा जाना उचित ही हुआ। यह ग्रंथ लखनऊ के अखिलभारतवर्षीय कवि-सम्मेलन के शुभ अवसर पर—१० मार्च, १९३५ को—श्रीमान् के कर कमलों में अर्पित किया गया।

वक्तव्य

(द्वितीयावृत्ति पर)

हर्ष की बात है, महाकवि देव की सुंदर कविताओं के इस संग्रह को हिंदी-संसार ने पसंद किया, जिससे हमें आज इसकी द्वितीयावृत्ति निकालनी पड़ रही है !

यू० पी० के शिक्षा-विभागों के हम बड़े कृतज्ञ हैं, जिन्होंने इस ग्रंथ को अपनी कोविद-परीक्षा में नियत करके अपनी गुण-ग्राहकता का परिचय दिया है। आशा है, अन्य शिक्षा-संस्थाएँ और विश्व-विद्यालय भी इसे कोर्स में रखेंगे।

कवि-कुटीर
लखनऊ, ७।३।४६ }

दुबारेबाब

प्राक्कथन

महाकवि देवदत्त उपनाम देव-कवि दुसरिहा द्विवेदी कान्यकुब्ज ब्राह्मण पंसारीटोला बलालपुरा, शहर इटावा के निवासी थे । भाव-विलास में आपने अपना जन्म-काल संवत् १७३० लिखा, तथा सुख-सागर-तरंग ग्रंथ पिहानी के अकबरअलीखाँ को समर्पित किया । उनका आदिम समय संवत् १८२४ था । अतएव इनका जीवन-काल ९४ वर्ष से अधिक बैठता है । आप हिंदी के परमोत्कृष्ट कवियों में थे । गोस्वामी तुलसीदास तथा सूरदास के पीछे उत्तमता में हम इन्हीं का नंबर समझते हैं । आचार्यता, भाषा-सौष्ठव तथा भाव-गांभीर्य आपके प्रधान गुण हैं । टीका का भाग पढ़ने से भाव-गांभीर्य प्रकट होगा । देव के पूरे भाव खोज निकालना कठिन भी है । आपके ७२ या ५२ ग्रंथ कहे जाते हैं । उनमें से भावविलास (सं० १७४६), अष्टयाम, भवानी-विलास, कुशल-विलास, प्रेम-चंद्रिका, जाति-विलास, रस-विलास (सं० १७८३), शब्द-रसायन, सुख-सागर-तरंग (सं० १८२४), नीति-शतक, वैराग्य-शतक, सुजान-चरित्र, राग-रत्नाकर, देव-शतक, सुंदरी-सिंदूर, शिवाष्टक, प्रेम-तरंग, देव-माया-प्रपंच-नाटक, देव-चरित्र, वृद्ध-विलास, पावस-विलास, प्रेम-दर्शन, रसानंद-लहरी, प्रेम-दीपिका, सुमिल-विनोद, राधिका-विलास, नख-शिख और प्रेम-दर्शन ज्ञात हो चुके हैं । रस-विलास और प्रेम-चंद्रिका में परमोच्च साहित्य-गौरव है, शब्द-रसायन में आचार्यता, भाव-विलास में रीति-कथन, वृद्ध-विलास में अन्योक्ति, नाटक में (अर्द्ध-नाटक के रूप में) धर्म-विवेचन, देव-चरित्र में कृष्ण-कथा तथा अन्य ग्रंथों में अन्य अनेकानेक विषय ।

देवजी पहुँचे अनेक ऊँचे-ऊँचे स्थानों में, किंतु जमकर बहुत दिन कहीं भी नहीं रहे। चाहे आश्रयदाता की खोज में, या किसी अन्य कारण से आप सारे भारतवर्ष में घूमते फिरे। इसके फल-स्वरूप आपने जातियों और देशों की वधुओं का सच्चा वर्णन रस-विलास में बहुत अच्छा किया है। राग-रत्नाकर में राग-रागिनियों का उत्कृष्ट कथन है। देवजी की बहुज्ञता बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। इनकी रचना के मुख्य गुणों में भाषा-सौंदर्य, उत्कृष्ट छंदों का प्राचुर्य, प्राकृतिक दृश्यों का विवरण, वैभव, आचार्यत्व, ऊँचे खयाल, हृदय पर चोट करनेवाले उच्च प्रेम के कथन, उपमा, रूपकादि का अच्छा अवलोकन, चोजों का निकालना आदि कहे जा सकते हैं। आपने अधिकतर सवैया तथा घनाक्षरियों में रचना की। कुछ श्रेष्ठ दोहे भी लिखे।

इस ग्रंथ में हमने इनके मुद्रित तथा अमुद्रित बहुतेरे ग्रंथों से छाँटकर २७१ परमोत्कृष्ट छंद रखे हैं। २७० छंदों के नम्बर ही हैं तथा एक और १२४ (अ) है। अनेकानेक अन्य छंद भी ऐसे ही हैं, किंतु आजकल जनता थोड़े में अधिक जानने की इच्छा रखती है; इसी से थोड़े ही छंदों में हमने देव का महत्त्व दिखलाने का प्रयत्न किया है। पहले हमारा विचार था कि बिहारी-सतसई की भाँति इनके भी ७०० छंद चुनें, किंतु पीछे उपर्युक्त विचार से चुने हुए छंदों की संख्या कम कर दी गई है। ऐसे ही छोटे-छोटे संग्रह-ग्रंथ इतर महाकवियों के भी लिखने का विचार था। उनमें पचास या साठ से दो-ढाई सौ तक छंद रखे जाते। इस ग्रंथ में हमने प्रार्थना, सिद्धांत, विविध वर्णन, सीता-सौभाग्य, प्रकृति-निरीक्षण, समीर, चंद्र-चंद्रिका, विनोद, पावस, हिंडोरा, फाग, रास, राग, उपमादि, शाब्दिक सामंजस्य, संक्षिप्त गुण, रूप, चित्र, दर्शन-मिलन, प्रेम, मन, विरह, खंडिता, उपालंभ, मान, सखी की शिक्षा, काव्यांग, उद्धव और देश तथा जाति के विषयों पर छंद चुने हैं। अश्लील

विषयों के कई परमोत्कृष्ट छंद भी निकाल डाले गए हैं। देव-कृत छंदों में विविध भाव निकलते हैं, सो विषय-विभाजन में मतभेद हो सकता है, अर्थात् वे ही छंद अन्य विभागों में भी रखे जा सकते हैं, अथच नवीन विभाग बन सकते हैं, जैसे स्वाभाविकता, रस, भाव, अलंकार आदि-आदि अनेक विषयों पर। आशा है, ऐसे ही कई संग्रह निकल चुकने पर पाठक महाशय सुगमता-पूर्वक तुलनात्मक समालोचना में सफल हो सकेंगे। देवजी के छंदों पर टीका का प्रारंभ हमने सं० १९८१ में किया था, किंतु कई कारणों से यह काम अब तक पड़ा रहा था। आदि में भूमिका की रचना देव-कृत छंदों से ही की गई है। उसमें आपके साहित्य-संबंधी विचार मिलेंगे। कुछ महाशय देव की रचना में अर्थ-काठिन्य का दोष लगाते थे, अथच एक समालोचक का कथन है कि इनमें असमर्थ अर्थ-पूर्ण शब्द-प्राचुर्य भी है। किसी के हज़ारों छंदों में से दो-चार में खींच-तान द्वारा कोई दोष स्थापित करके उसे व्यापक शब्दों में कह देना सत्य की अवहेलना करनी है। देव की रचना में अर्थ-गांभीर्य अवश्य है। प्रति शब्द पर विचार करने से छंदों में मनोहर अर्थ निकलते हैं। कुछ महाशय उन्हें समझने की सामर्थ्य ही न रखकर अपने अल्प ज्ञान का दोष कवि पर रखने लगते हैं। “चितवत लोचन अंगुलि लाए ; प्रकट युगल शशि तिनके भाए।” कुछ लोग समयाभाव या शीघ्रता की आदत से प्रति शब्द पर विचार न करके पूर्ण अर्थ नहीं समझ पाते, और अपनी उस असमर्थता का दोष कवि पर लादते हैं। इन्हीं कारणों से छंदों के कठिन भागों के हमने इस बार अर्थ लिख दिए हैं, जिसमें उपर्युक्त प्रकार की गड़बड़ न पड़े। साधारण पाठक भी प्रायः टीका-सहित पाठ चाहते हैं। यद्यपि हम लोग हिंदी की सेवा किया ही करते हैं, तथापि हमारा क्षेत्र टीका न होकर समालोचना है। टीका हमने इतिहास के कारण केवल भूषण पर लिखी थी।

इस बार देव के विषय में यही करना पड़ा, सो भी विवश होकर । एकाध मित्र ने कहा कि यदि इस टीका की भी टीका हो, तो सर्व-साधारण की समझ में आए । हम इसे ऐसी कठिन समझते नहीं, तथापि, है यह मर्मज्ञों के लिये । इसे बहुत फैलाकर कहने का श्रम हमें स्वीकार नहीं है । देव-कृत दोहों के अतिरिक्त प्रायः ३५०० छंद हैं, जिनमें हजार-आठ सौ तक उत्कृष्ट निकलेंगे । प्रायः १४०० छंद छुँटे थे, जिनमें से ये २७१ यहाँ दिए जाते हैं । २५० छंद छुँटने बैठे थे, किंतु २१ और छुँट गए, जिनको अलग करना ठीक न जँचा, सो वे भी रख दिए गए । प्रायः २०० और छंद भी इसी उत्तमता के निकलेंगे, ऐसा विचार है । शेष तीन-चार सौ छंद भी उत्कृष्ट हैं, किंतु इन ५०० के बराबर नहीं । हमारी समझ में बिहारी के प्रायः ढाई सौ छंद श्रेष्ठ होंगे, और इतरो के भी भले-बुरे निकलेंगे । कवि-सुधा निकालने का हमारा मुख्य विचार यह है कि सुकवियों की उत्कृष्ट रचनाएँ एकत्र हो जायँ तथा तुलनात्मिका समालोचना की सुविधा हो जाय । अभी लोग किसी कवि के अच्छे और दूसरे के साधारण या बुरे छंद लेकर कभी-कभी तुलना करने बैठते हैं, जिससे न्याय नहीं होता । ये संग्रह निकल जाने से श्रेष्ठ छंद एकत्र हो जायँगे, और यह कठिनता कम हो जायगी । बिहारी और देव के तुलनात्मक छन्दों का एक चक्र भी दिया जा रहा है ।

लखनऊ
सं० १९६२ }

मिश्रबंधु

भूमिका

यह भूमिका महाकवि देव-कृत स्फुट दोहों को एकत्र करके बनाई गई है। पाठक महाशय इन कविवर के ऐसे विचार इन्हीं के शब्दों में सुनें—

(१)

प्रार्थना

इंदु-कलित सुंदर बदन मनमथ-मथन-बिनोद ।
गोबरधन-गिरि जासु बन, बिहरन गोपति गोद॥ १ ॥
श्रीराधे ब्रजदेवि जै सुंदर नंदकिशोर ।
दुरित हरौ चित के चितै नैसुक दै दृग-कोर ॥ २ ॥
राधा कृष्ण किसोर युग पद बंदौ जग-बंद ।
मूरति रति सिंगार की सुद्ध सच्चिदानंद ॥ ३ ॥
श्रीराधा हरि-प्रेम-बस सरस सिंगार उदार ।
छ रितु बारहौ मास गुन बृंदा-बिपिन-बिहार ॥ ४ ॥
हरिजसरस की रसिकता सकल रसायनि-सार ।
जहाँ न करत कदर्थना यह अनर्थ संसार ॥ ५ ॥

❀ जिसका वन गोवर्द्धन-गिरि है, और जो गउओं के स्वामी नंदोप की गोद में बिहार करता है ।

दारिद उदर विदार जसु आदर उदित उदार ।
 जग अमंद आनंद गुन मंद कियो मंदार॥ ६ ॥
 धरयो निरंतर सात दिन गिरिवर गिरिधरलाल ।
 उपजै हिय मैं धकधकी, थकी न भुज केहु काल ॥ ७ ॥
 श्रीगुरुदेव कृपाल की कृपा सुबुद्धि समीप ।
 तिमिर मिटै, प्रगटै हृदय-मंदिर अनुभव-दीप ॥ ८ ॥
 एक भक्ति गोपीन की प्रेम - भाव संसार ।
 दूजी भक्ति बिरक्त जन दास्यता-भाव बिचार ॥ ९ ॥

(२)

साहित्य

ऊँच-नीच तन कर्म-बस चलयौ जात संसार ।
 रहत भव्य भगवंत जसु नव्य काव्य सुख-सार ॥ १० ॥
 रहत न घर बर बाम धन तरुवर सरवर कूप ।
 जस-सगीर जग में अमर भव्य काव्य-रस-रूप ॥ ११ ॥
 अर्थ सवद सुंदर सरस प्रगट भाव रस प्रीति ।
 उत्तम काव्य सुसब गुनन आगर नागर गीति ॥ १२ ॥
 अनुप्रास अरु जमक जुत अद्भुत बारह भाँति ।
 इन्हें अछत नीकी लगै अलंकार की पाँति ॥ १३ ॥

॥ गुण से कल्पवृक्ष मंद किया ।

† दास-भाव । सखी-भाव तथा दास-भाव की भक्ति का कथन इस दोहे में आया है ।

‡ जो हैं । देव का मत है कि अनुप्रास और यमक युक्त होने से अलंकार अच्छे लगते हैं ।

उपर रूप अनूप अति, अंतर अंतक* तूल ।
 इंद्रायन† के फल यथा करियारी‡ के फूल ॥ १४ ॥
 उपर रूखो अतिहि फल, अंतर अति रस राखि ।
 सुरुचि जीभ जौहर करत कौहर\$फल मुख चाखि ॥ १५ ॥
 कहत लहत उलहत हियो, सुनत चनत चित प्रीति ।
 शब्द अर्थ भाषा सुरस बसत काव्य दस रीति ॥ १६ ॥
 कविता-कामिनि सुखद पद सुबरन सरस सुजाति ।
 अलंकार पहिरे अधिक अदभुत रूप लखाति ॥ १७ ॥
 अलंकार में मुख्य द्वै उपमा और स्वभाव ।
 सकल अलंकारन बिषै परसत प्रगट प्रभाव ॥ १८ ॥
 अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लच्छना लीन ।
 अधम व्यंजना रस कुटिल उलटी कहत नवीन ॥ १९ ॥
 दसा अवस्था हाव दस यद्यपि सकल तियानि ।
 तदपि रसिक क्रम ते कहत मुग्ध मध्य प्रौढ़ानि ॥ २० ॥
 दसम अवस्था मूरछा कहूँ मरन है जात ।
 नीरस जानि न बरनिह कठिन करुन सुखघात ॥ २१ ॥
 विमल सुद्ध सिंगार-रस देव अकास अनंत ।
 उड़ि-उड़ि खग ज्यों और रस बिबस न पावत अंत ॥ २२ ॥

* यमराज, मृत्यु ।

† एक प्रकार का फल, जो देखने ही में अच्छा होता है ।

‡ लाल रंग का फूल जो ज़हर होता है ।

\$ लाल रंग का फल ।

पात्र मुख्य सिंगार को सुद्ध सुकीया नारि ।
 प्रथम संग नवनेह के बरे॥ परे दिन चारि ॥ २३ ॥
 परकीया उपपति बिरह होति प्रेम-आधीन ।
 पति संपति तन बिपति मैं दौरि परै पनपीन ॥ २४ ॥
 पर-रस चाहै परकिया तजै आपु गुन गोत ।
 आप औटि खोवा मिलै खात दूध फल होत† ॥ २५ ॥
 काची प्रीति कुबालि की बिना नेह रस रीति ।
 मार रंग‡ मारु मही\$ बारु की-सी भीति ॥ २६ ॥
 मुग्धादिक बयभेद अरु मान सुरत सुरतंत ।
 बरने मत साहित्य के उत्तम कहो न संत ॥ २७ ॥
 रसनि-सार सिंगार-रस, प्रेम-सार सिंगार ।
 बिना प्रेम दंपति बिपति संपति सुख दुख-भार ॥ २८ ॥
 सरस भाव सर अंकुरित फूलि फलै सुख-कंद ।
 सुपन, दरस, सुमिरन, परस, बरसत रस-आनंद ॥ २९ ॥

॥ विवाह हुए ।

† खोया को पानी में घोलकर और औटाकर जो दूध बनाया जाता है, वह कृत्रिम, हानिकर और कुस्वादु होता है । असली दूध लाभकर, सुस्वादु और पौष्टिक होता है । स्वकीया और परकीया की प्रीति में भी इसी प्रकार असली और नकली दूध का भेद है ।

‡ रंग का मरना; चौपड़ में चार नरदों रंग की, चार बदरंग की होती हैं । रंग की नरद मरने से विशेष हानि होती है ।

\$ मारनेवाली मही = दलदल ।

(३)

प्रेम

मायादेवी नायिका, नायक पुरुष आप ।
 सबै दपतिन में प्रगट देव करै तिहि जाप ॥ ३० ॥
 छेम छिमा छिति प्रेम की हेम भरै तेहि साख ।
 छियो भियो, औधो भरयो अंग संग अभिलाखि ॥ ३१ ॥
 दंपति सुख संपति सजत तजत बिषै-बिष-भूख ।
 देव सुकवि जीवत सदा पीवत प्रेम-पियूख † ॥ ३२ ॥
 नागर अरु ग्रामीन-गति समुक्त परम प्रवीन ।
 कामु कहा तिनको जु सठ कामुक हदै मलीन ॥ ३३ ॥
 तनिक भुठाई प्रेम की भूठे कुल-गुन-गोत ।
 प्रेमीजन प्रिय प्रेम-बस जगमग जग में होत ॥ ३४ ॥
 नव सुंदर दंपति जदपि सुख-संपति को मूल ।
 प्रेम बिना छिन छेम नहि हेम-सलाका तूल ‡ ॥ ३५ ॥

❀ सोना अंग-संग रहने की अभिलाष से अपने को छेदवाता,
 भिदाता तथा लटकता और साँचे में भरा जाता है ।

† जो प्रेम-पीयूष दंपति के पास होता है, उसमें विषय-विष की
 चाह नहीं होती ।

‡ समान । दंपति परम सुंदर क्यों न हों, परंतु यदि उनमें प्रेम
 नहीं है, तो उनके लिये क्षण-भर को भी कुशल नहीं है । दंपति-सुख
 के लिये प्रेम आवश्यक है, सौंदर्य नहीं ।

प्रेम-पियूख-पयोधि मैं मिलत बिमल निरदुंद ।
 न्यारो होत न एक है ज्यों जल ते जल-बुंद ॥ ३६ ॥
 पूरन पुन्य उदोत जेहि प्रेम-पियूख❧-पयोधि† ।
 निकसी निरमल चंद्रिका, दिकसी सब जग सोधि ॥ ३७ ॥
 प्रेमवती पदुमिनि हरै मधुकर-उर की प्यास ।
 बूड़ि मरे आल धूलि मैं केतकि पद-बिन्द्यास ॥ ३८ ॥
 प्रेम रूप रस बस करै तिय मैं प्रेम अनूप ।
 यमकी-सी तिय प्रेम बिनु मनु आसीबिष‡-रूप ॥ ३९ ॥
 प्रेम कलह मध्या कलुष प्रौढ़ा मानम गर्व ।
 रोख दोख सों मित्तत नहि प्रेम पोष सुख पर्व ॥ ४० ॥
 तब ही लौं सिंगार रसु, जब लागि दंपति-प्रेम§ ।
 मलिन होत रस प्रेम बिन ज्यों कलई को हेम ॥ ४१ ॥
 यह बिचार प्रेमीन को बिषयी जन को नाहि ।
 बिषय बिकाने जनन की प्रेमो छियत+ न छाँहि ॥ ४२ ॥
 ऐसे ही बिन प्रेम रस नीरस रस सिंगार ।
 प्रेम बिना सिंगार हू सकन रसायन सार × ॥ ४३ ॥

❧ अमृत ।

† समुद्र

‡ सर्प ।

§ कवि दंपति-प्रेम से परिपूर्ण रस को ही शृंगार-रस मानता है ।

+ छुवत ।

× शृंगार बिना प्रेम के नीरस है, किंतु बिना शृंगार का भी प्रेम सरस है ।

गति अनन्य॥ मुग्धानि मैं तनमयता† नित होति ।
अंधकार जरि जात उर प्रेम-दीप की जोति ॥ ४४ ॥

॥ न, अन्य = अनन्य, अर्थात् जिसको दूसरी गति न हो ।

† लीन हो जाना ।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१. वंदना	१६	१६. संक्षिप्त गुण	८२
२. सिद्धांत	२३	१७. रूप तथा नख-शिख	८८
३. विविध वर्णन	२६	१८. चित्र-सा खिचा हुआ	९६
४. सीता-सौभाग्य	४१	१९. दर्शन-मिलन	१००
५. प्रकृति-निरीक्षण	४३	२०. प्रेम	१०३
६. समीर	४७	२१. मन	१२५
७. चंद-चाँदनी	४९	२२. विरह	१२६
८. विनोद	५२	२३. खाँडता	१३७
९. पावस	५४	२४. उपालंभ	१४०
१०. हिंडोरा	५७	२५. मान	१४६
११. वसंत और फाग	५८	२६. सखी की शिक्षा	१४७
१२. रास	६२	२७. काव्यांग	१५०
१३. कुछ राग-रागिनी	६५	२८. उद्धव-संवाद	१६०
१४. उपमा-रूपकादि	६६	२९. देश-जाति	१६५
१५. शाब्दिक सामंजस्य	७७		

देव-सुधा

(१)

वंदना

राखी न कलप तीनो काल बिकलप भेटि,
कीनो संकलप, पै न दीनो जाचकनि जोखि ;
नाग, नर, देव महिमा गनत नंदजू की,
माँगन जु आयो, सो न आँगन ते गयो रोखि ।
दए सब सुख, गए बंदी न बिमुख देव-
पितर अनंदी भए नंदीमुख-मख पोखि ;
घरनि - घरनि सुर-घरनि सराहैं सब

घरनि मैं धन्य नंदघरनि तिहारी कोखि ॥ १ ॥

कलप (सं० कल्पन = उद्भावना करना [दुःख की]) = विलाप करना, बिलखना । विकलप (विकल्प) = संदेह, आंति । जोखि = तौल करके, परिमाण करके । रोखि (रोषि) = रुष्ट होकर, अप्रसन्न होकर । नंदीमुख (नान्दीमुख) = श्राद्ध-विशेष, जो पुत्र-जन्म क उत्सव में किया जाता है । मख = यज्ञ । नंदघरनी = नंद की पत्नी अर्थात् यशोदा ।

पायन नूपुर मंजु कजै, कटि किकिनि मैं धुनि की मधुराई,
साँवरे अंग, लसै पट पीत, हिये हुलसै बनमात्र सुहाई ;

केतिक बिरंच्यो महा सुखन को संच्यौ जहाँ,
 बंच्यो ब्रज भूप सोई परब्रह्म भूप है ।
 सोई सुनि मुनि अवगाधा अब राधा-जस
 जानत न देव कोई कहा धौं अनूप है ;
 तेज है कि तप है कि मील है कि संपति है,
 राग है कि रंग है कि रस है कि रूप है ॥ ७ ॥

राधा के यश का वर्णन तथा उनकी आराधना है ।

बिरंच्यो = विशेष करके रंच (न्यून) किया । संच्यो = समूह ।
 अवराधा = आराधना (पूजा) की ।

चतुर्थ चरण राधा के यश के विशेषणों से भरा है ।

भूति हूँ बड़े जो कटु बोल, तो कढ़ाऊँ जीभ,
 छार डारौँ आँखिन का आँसू झलकनि पै॥
 कौन कहै कैसी सौति सो तौ ठकुरायनि लिखी,
 है ब्रज - बालन के भाल फलकनि\$ पै ।
 है रहौँ नजीकी पै न जो की दुचिताई गहाँ,
 पीकी प्रानप्यारी लहाँ नीकी ललकनि पैx;

॥ यदि जीभ से झूलकर भी दुर्वचन निकलें, तो उसे निकलवा लूँ,
 और यदि आँख में आँसू झलक जायँ, तो उस पर भी झूल डाल
 दूँ । प्रयोजन यह कि सौति द्वारा निरादर सहकर भी क्षोभ न करूँ ।

\$ जब ब्रह्मा ने मस्तक पर ही सौति का होना लिख दिया है, तब
 वह कैसी है, इसकी चर्चा कौन चलावे ?

x सौति का आदर देखते हुए निकट रहकर भी मन उद्विग्न न
 करूँ, अथवा ज्येष्ठा सपत्नी को चित्त की उमंगों से भेदूँ ।

के घर में उतरीं । उनके मैं पैर पड़ती हूँ । वही राधा तीनों लोकों को कल की पुतली के समान हाथ में लिए हुए (स्ववश किए) अपने गुणों से बाँधकर नचा रही हैं ।

तीर धन्यो जुगहीर*गुहा गिरि धीर धन्यो सु अधीर महा हैं,
पूँछती पीर भरे दृग नीर, त्यों एकै समीर करैं औ' सराहैं ;
छोर भिजै यक पोंछती चीर लैं, राधे रहैं तिरछा करि छाहैं,
भेटती भीर अहीरन की बर वीरज की बलधीर \$ कीचाहैं ॥४॥

गोवर्धन-धारण का वर्णन है । तीर धर-यो = किनारे पर (उतार-कर) रख दिया । बर वीरज = श्रेष्ठ वीर्य (पराक्रम) ।

बारे बड़े उमड़े सब जैबे का, हौं न तुम्हें पठवों बलिहारी,
मेरे तौ जीवन देव यही धनु, या ब्रज पाई मैं भीख तिहारी;
जाने न रीति अथाइन की, नित गाइन मैं बनभूमि निहारी,
याहि कोऊ पहिचाने कहा, कछु जानै कहा मेरा कुंतविहारी ॥५॥
जादव बृद्ध जौ लेन पठाए त तौ धनु गोधनु ले मबु जैयै,
या लरिकाहि कहा करि है नृप गोप-समूह सबै संग हैयै ;
तौ ही लौं जीवन मो ब्रज, जौ लगि खेलतु साथालिबलभैयै,
सर्वसुकंसु हरो न अभैx किन आँखिनु ओट करौ न कन्हैयै ॥६॥

बेदन हूँ गने गुन गनै अनगने भेद,

भेद बिन जाको गुन निरगुनह यहै ;

* गहिरा ।

\$ बलदेव के भाई अर्थात् कृष्ण ।

x अभी ।

केतिक बिरंच्यो महा सुखन को संच्यौ जहाँ,

बंच्यो ब्रज भूप सोई परब्रह्म भूप है ।

सोई सुनि मुनि अवगाधा अब राधा-जस

जानत न देव कोई कहा धौं अनूप है ;

तेज है कि तप है कि मील है कि संपति है,

राग है कि रंग है कि रस है कि रूप है ॥ ७ ॥

राधा के यश का वर्णन तथा उनकी आराधना है ।

बिरंच्यो = विशेष करके रंच (न्यून) किया । संच्यो = समूह ।

अवराधा = आराधना (पूजा) की ।

चतुर्थ चरण राधा के यश के विशेषणों से भरा है ।

भूति हूँ बड़े जो कटु बोल, तो कढ़ाऊँ जीभ,

छार डारौँ आँखिन का आँसू झलकनि पै॥;

कौन कहै कैसी सौति सो तौ ठकुरायनि लिखी,

है ब्रज - बालन के भाल फलकनि\$ पै ।

है रहौँ नजीकी पै न जो की दुचिताई गहाँ,

पीकी प्रानप्यारी लहाँ नीकी ललकनि पैx;

॥ यदि जीभ से झूलकर भी दुर्वचन निकलें, तो उसे निकलवा लूँ, और यदि आँख में आँसू झलक जायँ, तो उस पर भी धूल डाल दूँ । प्रयोजन यह कि सौति द्वारा निरादर सहकर भी क्षोभ न करूँ ।

\$ जब ब्रह्मा ने मस्तक पर ही सौति का होना लिख दिया है, तब वह कैसी है, इसकी चर्चा कौन चलावे ?

x सौति का आदर देखते हुए निकट रहकर भी मन उद्विग्न न करूँ, अथवा ज्येष्ठा सपत्नी को चित्त की उमंगों से भेदूँ ।

दूजो नहिं देव, देव पूजों राधिका के पद,

पलक न लाऊँ धरि लाऊँ पलकनि पैरू॥ ८ ॥

सखी गोपियों को शिक्षा देती है, और उनसे राधिका की प्रार्थना तथा पूजा करने को कहती है ।

छार डारों = धूल डाल दूँगी । फलकनि = तरुते, पट्टे ।

नजीकी = पास की । हौं = मैं । ललकनि = उद्दाम इच्छा । पलक न लाऊँ = थोड़ा भी विलम्ब न करूँ । अथवा 'पलक न मीचूँ, किंतु एकटक लगाके देखा करूँ' ।

(२)

सिद्धांत-समता

हैं उपजे रज-बोज ही ते बिनसे हू सबै छिति छार कै छाँड़े ,
एक-से देखु कछू न बिसेखु ज्यों एकै उन्हार† कुम्हार के भाँड़े ;
तापर ऊँच औ' नीच बिचारि बृथा बकि बाद बढ़ावत चाँड़े ,
वेदनि‡ मूँद, कियो इन दूँ दु कि सूदु अपावन पावन पाँड़े ॥६॥

अधर्म

मूढ़ कहैं मरि कै फिरि पाइए ह्यौ जु लुटाइए भौन भरे को,
ते खल खोइ खिस्यात खरे अवतार सुन्यो कहूँ छार परे को ;

⊗ देव कवि कहता है कि कोई दूसरा देवता नहीं है, केवल राधिका के पैर पूजूँगी, अथवा उनको आँखों पर रख लाऊँगी, और इसमें पल-भर भी देर न करूँगी ।

† अनुहारि, एक ही तरह ।

‡ वेदों को बंद करो, क्योंकि इन्होंने दुःख मचाया है कि शूद्र अपावन हैं, और पाँड़े अर्थात् ब्राह्मण पवित्र हैं ।

जीवत तौ व्रत भूख सुखौत समीर महा सुररुख॥ हरे को,
 ऐसी असाधु असाधुन की बुधि साधन देत सराध मरे को ॥१०॥
 को तप कै सुरराज भयो, जमराज को बंधनु कौने खुलायो,
 मेरु मही मैं सही करि कै गथ ढेरु कुबेरु का कौने तुनायो ;
 पापु न पुन्य न नर्क न सर्गमरो सुमरो फिरि कौने बुलायो,
 गूढ़ ही वेद पुराननि बाँचि लबारनि लोग भले भुरकायो ॥११॥
 परपत्त-निरूपण ।

शृंगार

देव सुन्यो सब नाटक चाटक चाट उचाटन मंत्र अतंक को† ,
 पै तरुनी त्रिय के दृग-कोर ते और नहीं चित-चोर चमंक को ;
 घूँघुट‡ ओट की आधिक चोट को मूलसम्हारै कोमूल कलंक को,
 बीछी§ छुवै किन छीछीबिसौ वहतौ बिसुबिस्व बसीकरबंरु को ।
 चाटक = चेटक = जादू । चाट = चाह, वशीकरण ।

॥ कल्पद्रुम । पर-पत्त-निरूपण ।

† सब नाटक, चाटक, चाट, उचाटन (चित्त को हुमसा देना)
 आदि के मंत्रों के आतंक (भारी प्रभाव) को तो सुना, किंतु चित्त
 चुरानेवाली तथा उसे चकित करने को तरुणी स्त्री की चखकोर से
 बढ़कर और कोई वस्तु नहीं देखी ।

‡ घूँघुट की आड़ से स्त्री के नेत्र की पूरी चोट को कौन कहे,
 उसकी आधी चोट की पीड़ा कलंक का मूल होने पर भी कौन
 सँभाल सकता है ?

§ बीछी भले ही छुवै (डंक मारै), विष भी उसके सामने छीछी
 (तिरस्कृत) है, क्योंकि उस बक (तिरछी चितवनवाली) स्त्री का
 विष संसार को वश करनेवाला है ।

जाके न काम न क्रोध विरोध न लोभ छुबै नहिं छोभको छाहौ,
मोह न जाहि रहै जग-बाहिर, मोल जबाहिर तौ अति चाहौ ;
बानी पुनीत ज्यों देवधुनी॥ रस आरद\$ मारद के गुन गाहौ,
सील-ससी, सबिता-छबिता, कबिताहि रचै, कवि ताहि सराहौ ।

छाहौ=झाहँ भी । जग-बाहिर = जो लोकोत्तर हो ।

कवि का उच्च कर्तव्य वर्णित किया गया है ।

सारद के गुन गाहौ = सरस्वती के गुणों का अवगाहन करो
(अर्थात् कवि में ये गुण खोजो) । प्रयोजन यह है कि कविमें
शारदा के गुण होने चाहिए ।

जानिए न जात पहिंचानिए न आवत,

बिती त्यों दिन-राति पै न रीत्यों परिजातु है ।

जगत प्रवाह पथ अकथ अथाह देव,

दया के निबाह कहूँ कोई तरि जातु है ।

केते अभिमानी भए पानी के बलूला, कोई

बानी बीजु धरम धरा पै धरि जातु है ;

सबद रसायनि के अथ उपायनि,

अमर तरु कायनि अमर करि जातु है ॥१४॥

कवि-माहात्म्य का वर्णन है । निबाह = निर्वाह । सबद = शब्द ।
बलूला = बुझा ।

॥ गंगा ।

\$ आर्द्र, गीला, भीगा ।

सत्य

जो कछ पुन्य अरन्य जल स्थल तीरथ खेत निकेत कहावै,
 पूजन-जाजन औ' जप-दान अन्हान परिक्रम गान गनाव ;
 और किते व्रत नेम उपास अरंभु कै देव को दंभु दिखावै ,
 हैं सिगरे परपंच के नाच जु पै मन में सुचि साँच न आवै ॥१५॥
 है अभिमान तजे मनमान वृथा अभिमान को मान बहैए,
 देव दया करे सेवक जानि सुसील मुभाय सलोनी लहैए;
 को सुनि कै भिन मोल बिकाय न बोलन कोइ को मोल न हैए,
 पैए असीस लचेए जो सीस लची रहिए तब ऊँची कहैए ॥१६॥

कवि उपदेश के हेतु से सिद्धांत का वर्णन करता है । सलोनी =
 लावण्यमयी ।

भक्ति

कथा मैं न, कंथा मैं न, तीरथ के पंथा मैं न,
 पाथी मैं, न पाथ मैं, न साथ की बसीति मैं ;
 जटा मैं न, मुंडन न, तिलक त्रिपुंडन न,
 नदी-कूप-कुंडन अन्हान दान-रीति मैं ।
 पीठ-मठ-मंडल न, कुंडल कमंडल न,
 माला-दंड मैं न, देव देहरे का भीति मैं ;
 आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरे रह्यो,
 पाइए प्रगट परमेश्वर प्रतीति मैं ॥१७॥
 ऐसो जु हौं जानतो कि जैहै तू बिषै के संग,
 एरे मन मेरे हाथ-पायँ तेरे तोरतो ;

आजु लौं हौं कत नरनाहन की नाही सुनि,
 नेह सों निहारि हेरि बदन निहोरतो ।
 चलन न देतो देव चंचल अचल करि,
 चाबुक चेतावनोन मारि मुँह मोरतो ;
 भारो प्रेम-पाथर नगारो दै गरे सों बाँधि,
 राधावर-बिरद के बारिधि में बोरतो ॥१८॥

वैराग्य

बाग्यो बन्यो जरतारको॥तामहिं ओस कोहार तन्या मकरी ने×,
 पानी में पाहन-गोत चलयो चढ़ि, कागद की छतुगी सिर दाने\$;
 काँख में बाँधि कै पाँख पतंग के देव सुसंग पतंग को लीने॥ ,
 मोम के मंदिर माखन को मुनिबैठ्योहुतासनआसनकीने+॥१९॥
 आवत आयु को द्यौप अथौत, गए रवि यों अँधिगारिए ऐहै ;
 दाम खरे दै खरीदु खगे गुरु, मोह की गोनी न फेरि बिकैहै ।
 आध्यात्मिक छंद है ।

॥ संसार की बड़ाइयाँ ।

× माया ।

\$ जीवात्मा संसार में इसी प्रकार जाता है ।

॥ पतिंगा के पंख बगल में बाँधकर उड़ना चाहते हैं सूर्य के निकट, किंतु वे जल जायँगे । प्रयोजन, सांसारिक वस्तुओं की असारता के प्रदर्शन का है ।

+ मोम का मंदिर संसार है, माखन का मुनि शरीर और हुताशन जीवात्मा ।

देव छितीस की छाप बिना, जमराज जगाती॥ महादुखु दैहै ;
जात उठी पुर देह की पैठा, अरे बनियै बनियै नहि रहै ॥२०॥

देव प्राति-पंथा चीरि चीरि गरे कंथा डारि ,

भसम चढ़ाय खान-पान हू न छुजिये;

दूरि दुख दुंद गाख मुंदरा† पहिरि कान,

ध्यान सुंदरानन गुरु के पग पूजिए ।

शृंगी की टही\$ लगाय भृंगीकोट+ कै मनु

बिरागिनि ह्वै वपु विरहागिनि मैं भूजिए ;

केलो ताज राधिका अकेली होय जोगिनि, तौ

अलख जगाय हेली×चेलो चलि हूजिए ॥२१॥

राधिकाजी की वियोगिनी दशा की संभावना पर गोपियों का योग धारण करना वर्णित है ।

कंथा = कथरी । दुंद = उत्पात । शृंगी = एक प्रकार का सींग का बाजा, जो प्रायः योगियों के पास होता है ।

काम परयो दुलही अरु दूलह, चाकर यार ते द्वार ही छूटे ,

माया के बाजने बाजि गए, परभात ही भातखवा उठि बूटे ;

आतसचाजो गई अिन में छुटि, देखि अजौ उठिकै अँखि फूटे ,

देव दिखैयन दाग बने रहे, बाग बने ते बरीठेई लूटे ॥२२॥

❀ चुंगी का अक्रसर ।

† बाज़ार ।

‡ मुद्रा, जो फ़कीर लोग कान में पहनते हैं ।

\$ टक, धुनि ।

+ लखोरी । मन भृंग-कीट-सा करके ।

× सखी, है अली ।

भृत्य

पावक में बसि आँच लगे न, बिना छत खाँड़े कि धार पै धावै,
मीत सों भीत, अमीत अमीत सों दुख सुखी, सुख में दुख पावै॥
जोगी ह्वै घाठ हू जाम जगै, अठजामनिकामनि सों मनु लावै,
आगिला पाछिले सो विसवै फन कृत्य करै तब भृत्य कहावै ॥२३॥

(३)

विविध वर्णन

निसि बासर मात रसातल लौं सगमात घने घन बंधन नाख्यो,
ब्रज † गोकुल ऊ ब्रजगोकुल ऊ रज्यो प रज्यो परलौ मुख भाख्यो ×,
करुना कर त्यों वर सैल लियो करुना करिकैं वरसै अभिलाख्यो,
मुर को न कहूँ मुर को रिपुरी अंगुरी न मुच्यो अंगुरी पर राख्यो ।

गोवर्धन-धारण का वर्णन है । रसातल = पृथ्वी-तल पाँचवाँ लोक ।
बंधन नाख्यो = बंधन तोड़ दिए, अर्थात् अतिवृष्टि की मर्यादा भंग
कर दी । ब्रज-गोकुल = ब्रज की गायों का वंश तथा ब्रज के गोकुल-
ग्राम । मुर को रिपुरी = एरी, मुरारि । मुच्यो = मुड़ा, हिला ।

✽ दुख में सुखी रहे और सुख में दुखी, अर्थात् सुख की यहाँ तक
इच्छा न करे कि सुख से उसे दुख हो । इस छन्द में व्यंग्य द्वारा
मालिकों की निन्दा की गई है जो नौकरों में ऐसे असंख्य गुण गण
होने की इच्छा करते हैं ।

† ब्रज की प्रजा ने ज्यों ही अपने मुख से यह कहा कि ब्रज
गोकुल ग्रामों तथा ब्रज के गो-वंश पर प्रलय पड़ी, त्यों ही करुणाकर
भगवान् ने श्रेष्ठ पहाड़ करुणा करके उठा लिया, तथा यह अभि-
लाषा की कि अब घन और भी बरसे ।

× इस पद का पाठांतर ऐसा भी है—

‘करुनाकर त्यों कर सैल लियो करुना करिकैं करसै अभिलाख्यो ।’

इस दशा में अर्थ यह आवेगा कि हाथ में सैल लेकर उसे खींचने
की इच्छा की (अर्थात् खींचा), और तब ज़रा भी न मुरककर
उँगली पर रख लिया ।

कंपत हियो, न हियो कंपत हमारो, क्यों
 हँसी तुम्हें अनोखी, नेकु सीत मैं ससन देहु;
 अंबर हरैया हरि अंबर चज्यारो होत,
 हेरिकै हँसै न कोई हँसै तौ हँसन देहु ।
 देव दुति देखिबे को लोयन मैं लागी लखौ,
 लोयन मैं लाज लागी, लोयन लसन देहु ;
 हमरे बसन देहु, देखत हमारे कान्ह ,
 अबहूँ बसन देहु, ब्रज मैं बसन देहु ॥ ५ ॥

चीर-हरण का वर्णन है। इसमें शृंगारिक तथा आध्यात्मिक, दोनों अर्थ बहुत अच्छे निकलते हैं।

गोपी-वचन — हमारा हृदय काँपता है (शृंगार के अर्थ में जाड़े से तथा आध्यात्मिक में योग साधने की क्रियाओं की कठिनता से)।

भगवद्वचन—हमारा हृदय नहीं काँपता (इतना जाड़ा नहीं है, योग ऐसा कठिन नहीं)।

गो० — यह अनोखी हँसी तुम्हें क्यों (भाती) है ?

भ० — अपने को ज़रा जाड़े में साँसें लेने दो। शृंगार में प्रयोजन यह है कि अभी नहीं निकलती हो, जब जाड़ा लगेगा, तब स्वयं निकल आओगी। आध्यात्मिक प्रयोजन यह है कि थोड़ा-सा शीतोष्णोद्भव कष्ट सहन किए बिना योग-सिद्धि अप्राप्य है।

गो० — हे कपड़े हरण करनेवाले भगवान् ! आसमान उजियाला हुआ जाता है (जिससे लोग-बाग यहाँ आ जावेंगे), कोई देखकर हँसे न ?

भ० — यदि आकाश उजियाला हो रहा है, और कोई हँसे, तो उसे हँसने दो। प्रयोजन यह है कि शुद्ध प्रेम और योग, दोनों के

लिखे लोक-लाज अनावश्यक है, और उसका छोड़ना ही ठीक है। एक यह भी बात है कि खेचरी मुद्रा से ब्रह्म का ध्यान आकाश में होता है।

देव दुति देखिबे को लोयन में लागी लखौ = यह भी भगवान् का वचन है। शृंगार के अर्थ में यह प्रणय-निवेदन है कि देव कवि कहता है कि तुम्हारी शोभा देखने को हमारे नेत्रों में लगन है, सो देखो, और लोक-लाज की परवा छोड़ दो। आध्यात्मिक अर्थ में यह प्रयोजन है कि दैवी शोभा देखने को आँखों में (स्वाभाविक) लगन है, उसे देखो (मत भुलाओ), और लोक-लाज त्याग द्वारा योग से पुष्ट करो।

गो० — हमारी आँखों में शरम लगी है (हम शृंगारिक अथवा आध्यात्मिक साधनों के लिये लोक-लाज नहीं छोड़ सकतीं)।

भ० — यदि आँखों में लाज लगी है, तो उन्हें शोभा पाने दो, अर्थात् संसार को उसी दशा में आँखें देखने दो, जिससे लोक-लाज आप-ही-आप छूट जायगी।

गो० — हे हमारे कान्ह ! देखते क्या हो ? हमारे कपड़े दो। (अरे, इतनी देर करते हो) अब भी कपड़े दे दो, और व्रज में बसने दो; अर्थात् ऐसे उपद्रव करोगे, तो हम व्रज से उजड़ जावेँगी। आध्यात्मिक प्रयोजन यह है कि योग हमें नापसंद है, तुम हमें व्रज में ही बसकर भक्ति करने दो। एक अर्थ यह भी निकल सकता है कि गोपी कहती हैं कि यह योग या लोक-लाज का परित्याग हमारे वश का नहीं है, तुम देखते क्या हो, (कपड़े) दो। इस पर भगवान् का उत्तर है कि हमारे अर्थात् यदि तुम्हारे वश का नहीं है, तो हमारे का तो है।

गंग-तरंगनि बीच बरंगनि ठाढ़ी करैं जपु रूप चढ़ोती,
देब दिवाकर की किरनैं निकसैं बिकसैं मुख-पंकज जोती ;

नीर भरी निचुरै अलकै छुटि कै छलकै मनो माँग ते मोती,
बिज्जुलि-से भलकै लपटे कन कज्जल-से अँग उज्जल धोती ॥२६॥

नायिका के स्नान (प्रातःकाल के स्नान) का वर्णन है । यह
छंद जाति-विलास का है, और ब्राह्मणी के विषय में कहा गया है ।
कालिय काल महा बिध ब्याल जहाँ जल ज्वाल जरै रजनी दिनु,
ऊरध के अध के उबरै नहिं, जाकी बयारि बरै तरु ज्योतिनु;
तां फनि को फन-फाँसिनु पै फँदि जाइ फँसे उकसे न कहूँ छिनु,
होत्रजनाथ ! सनाथ करो हम होती हैं नाथ अनाथ तुम्हैंविनु ॥२७॥

कालिय-मर्दन का वर्णन है । ऊरध के = ऊपर के (पत्नी आदि) ।
अध के = नीचे के (जलचर) । उबरै = बचै । उकस्यो न = निकला
नहीं । फन-फाँसिनु पै = फन के फंदों पर ।

मोर को मुकुट कटि पीत पटु कस्यो, कैसी
केसावलि ऊपर बदन सरदिंदु के,
सुंदर कपोलन पै कुंडल हलत, सुर
मुरली मधुर मिले हाँसी रस बिंदु के ।
माँगती सुहागु नाग-सुंदरी सराहि भागु,
जोरे कर सरन चान अरबिंदु के ;
किंकिनी रटनि ताल ताननि तननि देव,
नाचत गुबिंदु फन फननि फनिंदु के ॥ २८ ॥

केसावलि = केश-समूह । तननि = विस्तार, खिंचाव ।

❀ उज्ज्वल धोती से ढके हुए कुछ-कुछ खुले अंग जो नेत्र धुलने से
काजल के कणों से लिपटे हुए हैं, वे बिजली की भाँति चमक रहे हैं ।

फैलि-फैलि, फूलि-फूलि, फलि-फलि, हूलि-हूलि,
 भपकि-भपकि आई कुंजें चहूँ कोद ते ;
 हिलि-मिलि हेलिनु सौं केलिनु करन गईं,
 बेलिनु बिलोकि बधूँ ब्रज की बिनोद ते ।
 नंदजू की पौरि पर ठाढ़े हे रसिक देव
 मोहनजू मोहि लीनी मोहनी बिमोद ते ;
 गाथनि सुनत भूली साथनि की, फूल गिरे,
 हाथनि के हाथनि ते, गोदनि के गोद ते ॥२६॥

हेलिनु सौं = हाव-सहित ; हेला एक हाव का नाम है । हूलि =
 ढकेल करके । बिमोद = विशेष आनंद । गाथनि = चरित्रों को ।

अंबर अडंबर डमरूॐ गरजत बारि
 बरसि-बरसि सोखै बरसे बिसालु है ;
 देव पल घरी जाम दोऊ दगाँ सेत-स्याम
 न्यारो एक-एक मूँदि खोलत उतालु† है ।
 कौतुक त्रिबिध चहूँ चौहटे नचायो मीचु
 महि मैं मचायो चल अचलनि‡ चालु है ;

ॐ मेघ का शब्द डमरू के समान है ।

† सूर्य-चंद्र दोनो आँखें रात-दिन करते हैं ।

‡ 'उतालु' माने 'जल्दी-जल्दी' अर्थात् आँखों का खोलना और
 मूँदना जल्दी-जल्दी होता है ।

§ अचल पदार्थ पृथ्वी के चलने से चल हैं । यह भी कहा जा
 सकता है कि पृथ्वी में चल तथा अचल, दो प्रकार के पदार्थों की
 रीति चलाई गई है ।

खेलतु खिलैया ख्यालु थाकि न थिरातु कालु
 माया गुन जालु अदभुत इन्द्रजालु है ॥ ३० ॥
 एक होत इन्द्र, एक सूरज औ, चंद्र, एक
 होत हैं कुबेर कलु बेर देत नाया के ;
 अकुल कुलीन होत, पामर प्रबोन होत,
 दीन होत चक्रवै चलत छत्र छाया के ।
 संपति-समृद्धि, सिद्धि निद्धि, बुद्धि-वृद्धि सब
 भुक्ति-मुक्ति पौरि पर परी प्रभु जाया के ;
 एक ही कृपा-कटाच्छ कोटि यच्छ रच्छ नर
 पावैं घरवार दरवार देवमाया के ॥ ३१ ॥

पाँवर = पामर, नीच । चक्रवै = चक्रवर्ती राजा । पौरि पर =
 दरवाजे पर । समृद्धि = ऐश्वर्य । भुक्ति = भोग ।

तार मृदंग महारव सौं भनकारत भौंभन के गन जामैं ,
 गुंजत ढोल कदंबकॐ पुंज कुलाहल काहल† नादति तामैं ;
 भेरी घनेरी नरी सुरनारि नरीसुर नारि‡ अलापी सभा में ,
 गाजत मेघ घने सुर लाजत बाजत माया के द्वार दमामैं ॥ ३२ ॥

ॐ कदंबक = समूह ।

† ढोल-पुंज गुंजत, कुलाहल होत, तामैं कदंबक काहला नादति ।
 काहला = अप्सरा ।

‡ घनेरी भेरी, नरीसुर (नली से बजनेवाले बाजे), न अरि
 (हित) नरीसुर नारि सभा में अलापी ।

मात है आपु जनी जगमात कियो पति तात सुतासुत जायो❀,
ता उर माँह रमा है रमी बिधि बाम नरायन राम रमायो ;
लोक तिहूँ जुग चारिहूँ मैं जस देखौ बिचारि हमारोई गायो
जो हम सीस बसे रजनीस के तौ वहि ईस लै सीस बसायो † ॥३३॥

करुणा

पीरपराईसों पीरोभयो मुख, दीननि के दुख देखे बिलाती‡,
भीजिरही करुना§ करुना रस काल कि केलिनु सों कुम्हिलाती;
लै-लै उसासन आँसुन सों उमगै सरिता भरिकै ढरि जाती¶ ,
नाव लौं नैन भरै उछरै जल+ ऊपर ही पुतरी उतराती×॥३४॥

❀ माया ने माता होकर और जगज्जननी से अवतार लेकर,
अपने पिता ईश्वर से विवाह करके पुत्र और पुत्रियाँ उत्पन्न कीं,
और उस ईश्वर के उर में रमा होकर रमी, और उल्टी गति लेकर
नारायण और राम को रमाया ।

† जब कलंक चंद्रमा के सीस पर बसा, तब उस चंद्र को
महादेव ने माथे पर चढ़ाया ।

‡ इतना संकोच करती है, मानो लुप्त ही हो जाती है ।

§ करुणादेवी करुणा (दया) के रस से भीगी हुई है ।

¶ नदी भरकर बह जाती है ।

+ जब पानी भर जाता है, तब नीचे दब जाते हैं, और जब
पानी उनसे निकल जाता है तब ऊपर उछल आते हैं ।

× जल के ऊपर मानो आँख की पुतली उतराती है, अर्थात्
केवल जल और पुतली दिखलाई देती है, अथच शेष आँख दिखलाई
देती ही नहीं । •

इस छंद में करुणा का बड़ा अच्छा वर्णन है ।

भक्ति

प्यास न भूख, न भूषण की सुधि, भाव सुभूषण॥सौं उपजावै,
 देव इकंतहि कंतहि के गुन गावति नाचति नेह सजावै ;
 प्रेम-भरी पुलकै मुलकै उर व्याकुल कै कुल-लोकन जावै†,
 लै परबी परबी न गनै कर बीन लिए परबीन बजावै‡ ॥३५॥

श्रद्धा

कान भुराई पै कान न आनति§आनन आन कथान कदी है॥
 एकहि रंग रगी नख ते सिख एकहि संग बिबेक बदी है ;

⌘ अच्छे श्रलंकारों (सजावटों, गुणों) से भाव उत्पन्न करती है ।

† (पति को देखकर) प्रेम से भरी हुई पुलकै (रोमांचित होती है), तथा (पति के ओट हुए) उर व्याकुल कै मुलकै (झँकती है उसे देखने को) तथा अपने भारी प्रेम से पूरे लोक को लज्जित करती है । यहाँ पति से प्रयोजन परमेश्वर का है, क्योंकि वर्णन भक्ति का हो रहा है ।

‡ प्रवीणा, पर्व को पकड़ के और पर्व की परवा भी न करके हाथ में वीणा लेकर बजाती है, अर्थात् पर्व में तथा विना पर्व भी, हर समय बजाया करती है । वीणा में जो पर्दे होते हैं, उन्हें भी पर्व कहते हैं । पर्व का यह अर्थ मानने से इस पद का यह प्रयोजन बैठेगा कि वीणा के पर्व पर हाथ रखकर पर्व (होली, दिवाली आदि) की परवा न करके वह प्रवीणा वीणा हाथ में लेकर बजाती है, अर्थात् पर्व में तो बजाती ही है, वरन् विना पर्व भी बजाया करती है ।

§ भुराई (भुलाने, बहकाने की कानि मर्यादा) पर कान नहीं लाती है, अर्थात् किसी बात पर अविश्वास की रीति पर नहीं चलती है ।

॥ मुख से एक बात छोड़कर दूसरी कथा ही नहीं निकलती, अर्थात् चित्त में पूरा इकंगीपन है ।

देखिए देव जबै तब ज्यों हि त्यों॥, दूसरी पद्धति यै न पढ़ी है,
कोबिरचै कुल-कानि अचै मन के निहचै हिय चैन चढ़ी है ॥३६॥

दया

हाय दर्ई यहि काल के खयाल मैं फूल-से फूलि सबै कुम्हिलाने,
देवअदेव बली बल-हीन चले गए मोह की-हौसहि लाने † ;
या जग बीच बचै नहीं मोचु पे, जे उपजे ते मही मैं मिलाने,
रूप, कुरूप, गुनी, निगुनी, जे जहाँ जनमे, ते तहाँई बिलाने ॥३७॥

वैभव

चाँदनी महल बैठी चाँदनी के कौतुक को,
चाँदनी-सी राधा-छवि चाँदनी बिसाल रैं ;
चंद की कला-सी देव दासी संग फूली फिरें,
फूल-से दुकूल पैन्हे फूलन की मालरैं ।
छुटत फुहारे, वे बिमल जल झलकत,
चमकैं चँदोवा मनि-मानिक महालरैं ;
बीच जरतारन की, हीरन के हारन की,
जगमगी जोतिन की मोतिन की झालरैं ॥३८॥

बिसाल रैं = (चाँदनी को) भारी छवि हैं । यहाँ रैं-शब्द हैं के
अर्थ में आया है ।

॥ जब देखिए, तभी ज्यों-को-त्यों रहती है, अर्थात् उसके चित्त
में कभी कोई अंतर नहीं आता ।

† झूठी बात कौन बनावे, क्योंकि ऐसे कर्म से कुल-कानि नष्ट हो
जाती है ।

‡ मोह की हवस हीके लिये चले गए ।

उज्जल अखंड खंड सातएँ महल महा-
 मंडल सँवारो चंद-मंडल की चोट ही ;
 भीतर ही लालनि के जालनि बिसाल जोति,
 बाहर जुन्हाई जगी जोतिन की जोटही ।
 बरनति बानी चौर ढारति भवानी, कर
 जोरे रमा रानी ठाढ़ी रमन की ओट ही ;
 देव दिगपालनि की देवी सुखदायनि ते
 राधा ठकुरायनि के पायन पलोटही ॥३६॥

सँवारो = सजा हुआ । चोट ही = आघात करनेवाला, अर्थात्
 स्पर्धा करनेवाला । लालनि = लाल रत्नों की । जोटही = समूह
 (यूथ) । बरनति = यश वर्णन करती है । बानी = सरस्वती ।
 महामंडल = एक बड़ा गोल स्थान, अर्थात् (सातवें खंड पर का)
 एक गोल कमरा । जालनि = जालीदार खिड़कियाँ । रमन की
 ओट ही = अपने पति की आड़ में ।

मालिनी छंद

हँसि-हँसि पहिराई आपनी फूल-माला,
 भुज❀ गहि गहिराई प्रेम-बीची बिसाला ;
 रति-सदन अकेली काम-केली भुलानी,

मनु मय यह बानी मालिनी बी सुहानी ॥४०॥
 मालिन-जाति की स्त्री का वर्णन है । कवि इस छंद में मालिनी

❀ भुज गहि बिसाला (विस्तृत) प्रेम-बीची (प्रेम की लहर की)
 गहिराई (अग्राधता) प्रकट की । ननु=नैनू (नवनीत) ।

छंद के लक्षण भी दिखलाता है । प्रत्येक चरण में दो नगण (॥)
(॥) मगण (sss) और दो यगण (iss) (iss) हैं ।

गहिराई = गहरी की, अर्थात् अगाधता प्रकट की । बीचि = लहर ।

आश्रयदाता

भूलि गयो भोज, बलि-बिक्रम बिसरि गए,
जाके आगे और तन दौरत न दीदे हैं ;
राजा राइ राने उमराइ उनमाने,
उनमाने निज गुन के गरब गिरबीदे हैं ।
सुबस बजाज जाके सौदागर सुकवि,
चलेई आवैं दस हूँ दिसान के उनीदे हैं;
भोगीलाल भूय लाख पाखर लिवैया जिहि,
लाखन खरच रचि आखर खरोदे हैं ॥४१॥

दीदे = आँख की पुतलियाँ, दृष्टि । उनमाने = अनुमाने, अंदाज़े ।
उनको माना । गिरबीदे = गिरो रखे हुए, रेहन । पाखर = (पारख)
परख करनेवाला ।

गौरी-सौभाग्य

अचल सो ह्वे रह्यो पुरोहित हिमंचल को,
अंचल दगंचल सों गाँठि-सी परत ही॥

॥ पलकों की अंचल से गाँठ पड़ी, अर्थात् न पलक पड़ती है, न
अंचल गिरता है । प्रयोजन यह है कि निर्निमेष आँख अंचल
के भीतरवाले अंगों पर लग गई । इसी कारण पुरोहित स्तब्ध
हो गया ।

बधू नवऊढ़ कोनिहारि मुनि मूढ़ भए,
बचननि बेद विधि गूढ़ उचरत ही ॐ ।

चंद्र-कला चवै परी असंग गंग है परी,
भुजंगी भाजि भवै परी बरंगी को बरत ही †;

कामरिपु देव गुन दामरि पहिरि काम,
कामरि करी है भुज भामरि भरत ही ‡ ॥ ४२ ॥

हिमंचल (हिमालय) = पार्वती के पिता । अंचल = आंचल
(पार्वती का) दगंचल = पलक । भवै = पृथ्वी । बरंगी = उत्त-
मांगी । कामरिपु = महादेव । गुन = गुनकर, जान-बूझकर । दामरि =
रस्सी । कामरि = कंबल । नवऊढ़ = नई व्याही बधू । मुनि विवाह-
कार्य कराते थे ।

गूढ़ बन सैल बूढ़े बैल को गहाई गैल,

भूतन चुरैल छैन छाके छवि ओज के;

ॐ बचनों से शैव ईश्वरत्व-संबंधी ऋचाएँ पढ़ने से मुनि मूढ़ हो
गए क्योंकि शैव कामाशक्ति से उनका आशय संदिग्ध हो गया ।

† सर्पिणी लटों से हारकर पृथ्वी पर गिरी । चंद्रकला पार्वती
के मुख से हारकर गिर गई । प्रतीपालंकार है । गंगा छोटी बहन की
सौत हो जाने से अप्रंग हुई, क्योंकि वह शिव के मूढ़ चढ़ी हुई थीं ।

‡ कामरिपु (महादेव ने) भुज भामरि भरत ही, (पाणिग्रहण
करते ही मानौ) गुन (जान-बूझकर) दामरि पहिरी, (रस्सी पहनी
है, अर्थात् अपने को पाश में डाला है, और) काम कामरि करी है
(काम का कंबल ओढ़ा है, अर्थात् अपने को काम-वश कर
लिया है) ।

यथा कुमारसम्भवे—“पराजितेनापि कृतौ हरस्य, यो कंठपाशौ
मकरध्वजेन ।”

भंग के न रंग दे भगीरथ को गंग उत—

मंग जटा राखत न राख तन खोज के॥

देव न बियोगी अब योगी ते संयोगी भए,

भोगी भोग अंक परजंक चितचोज के † ;

ब्याल गज-खाल मुंड-माल औ' डमरु डारि

है रहे भ्रमर मुख सुंदर सरोज के ॥ ४३ ॥

भोगी = सर्प । भोग = फण । चितचोज के = चित्त को चकित करनेवाला ।

(४)

सीता-सौभाग्य

अनुराग के रंगनि रूप तरंगनि अंगनि ओष मनौ उफनी,
कवि देव हिये सियरानी सबै सियरानी को देखि सुहागसनी;
बर धामन बाम चढ़ी बरसैं मुसुकारि सुधा घनसार घनी,
सखियान के आनन-इंदुन तें अँखियान की बंदनवार तनी ॥ ४४ ॥

ओष = आभा । सियरानी = जुड़ानी, प्रसन्न हुई । घनसार = कपूर ।
उफनी = बढ़ी, उफनाई ।

ॐ भाँग का मज़ा छोड़ तथा भगीरथ को गंगा देकर न तो उत्तमांग (शिर) में जटा रखते हैं, न शरीर में भस्म का खोज (पता) ।

† देव कवि कहता है कि शिव वियोगी नहीं हैं, क्योंकि वह अब योगी से संयोगी हो गए हैं, अथवा शरीर में सर्प का भोग (संसर्ग) जो था, उसके स्थान पर चित्त प्रसन्न करनेवाली शय्या है ।

कवि ने इस छंद में प्रेम से जीवन में जो परिवर्तन होता है, उसका फल शिव-से महायोगी पर दिखलाया है ।

सीय के भाग के अच्छत अंकुर पुन्यनि के फल-फूल कढ़ाए ,
 भूपन की मुख ओप मृगम्मद चंदन मंद हँसीन बढ़ाए ;
 देव बिधीस के जान के ईस मुनीसन आसिस-मंत्र पढ़ाए ,
 श्रीरघुनाथ के हाथन पै मृगनैनिन नैन-सरोज चढ़ाए ॥ ४ ५ ॥

समाभेद रूपक है ।

अच्छत = विनाश न होनेवाला । बिधीस = ब्रह्मा तथा महादेव ।
 ईस = प्रभु; रामचंद्र से प्रयोजन है ।

सीता का भाग्य ही अक्षत है, पुण्यों के ही फल-फूल निकले हैं,
 राजाओं की मुख-प्रभा ही (जो पराजय के कारण काली हो गई है)
 कस्तूरी है । मंद हास्य चंदन है, तथा मृगनैनियों के नेत्र ही कमल
 हैं, जो भगवान् के हाथों पर चढ़े हैं (अर्थात् स्त्रियाँ उनके विजयी
 हाथों को देख रही हैं) ब्रह्मा और महादेव के ईश (राम (समझे
 जाकर मुनीशों के द्वारा आशीर्वाद-मंत्र पढ़ाए गए ।

सुख को सदन सुत-बधू को वदन देखि ,
 दसरथ दमौ दिसि सुजस बगारि कै ;
 सुदिन दिनेस-कुल दिनमनिजू को देखियत,
 दीप दीप दान दीपक उज्यारि कै ।

कवि राजा दशरथ के यश का वर्णन करता हुआ उनकी दान-
 शीलता का प्राधान्य प्रकट करता है । सीता की मुख-दिखरावनी के
 शुभ समय से संबंध है ।

दिनेस-कुल = सूर्यवंश । दिनमणि = सूर्य, प्रयोजन दशरथ से है ।
 दीप = (१) दीपक, (२) द्वीप । वारि के = जल से । दुरोदर =
 शंख ।

साँचे देव दीनबंधु दीनता न राखी कहूँ,
 आदर* उदार बसु बादर के वारि कै;
 मंदोदरी दरी में दुरथो है दौरि दारिद,
 निकारि दियो उदर दुरोदर को फारि कै† ॥ ४६ ॥

(५)

प्रकृति-निरीक्षण

छपद छबीले छीव पीवत सदीव रस,
 लंपट निपट प्रीति कपट ढरे परत;
 भंग भए मध्य अंग डुलत खुत्तत साँस,
 मृदुल चरन चारु धरनि धरे परत।
 देव मधुकर ढूक ढूकत मधूक धोखे,
 माधवी मधुर मधु लालच लरे परत;
 दुहु पर जैसे जलरुहु परसत, इहाँ
 मुहु पर भाई परे पुहुप मरे परत ॥ ४७ ॥

यहाँ नायक से बहुत-सी नायिकाओं पर पृथक्-पृथक् प्रीति रखने का उपालंभ वर्णित है। छीव = उन्मत्त। पहले चरण में भ्रमर-रूपी नायक की कपट-भरी झूठी प्रीति का कथन है। दूसरे चरण में उसकी शारीरिक दशा का कथन आया है।

मधूक (महुवा) के धोखे से मधुकर (मीठे नीबू) पर

* सत्कार, औदार्य तथा संपत्ति-रूपी बादलों के जल से।

† दारिद (दरिद्र) दुरोदर के उदर को फारिकै निकारि दियो,
 दौरि (दौड़कर) मंदोदरी (छोटे पेटवाली) दरी में (उदररूपी गुफा में) दुरथो (छिपा) है।

हुकी लगाकर बैठता है, और मधुर माधवी (मद्य) तथा मधु (शहद) के लालच से लड़ा पड़ता है ।

दुहु पर = दोनो पखनों से । जैसे दोनो पंखों से तुम कमल का स्पर्श करते हो, वैसे ही यहाँ महुवे के मुख पर तुम्हारी परछाई पड़ते ही उसके फूल झड़े पड़ते हैं, अर्थात् जो भ्रमर कमल का लोभो है, वह यदि महुवे के पास जाय, तो न उसकी शोभा है, न महुवे की । सखी भ्रमर के व्याज से नायक को केवल पद्मिनी-नायिका से अनुकूल होने की शिक्षा दे रही है ।

प्रीषम द्वै पहरी मिस जोन्ह महाविष ज्वालन सों परिवेठी ,
देखत दूष पिये हू रियूष अहूष महूष मिलो महुरेठी ;
देव दुराएहु जोति सो होति अँगेठी से अंगनि आगि अँगेठी ,
कातिक-राति जगी जम जोय जुठैल जठेरी सुजेठ की जेठी ॥४॥

द्वै पहरी = दुपहरी = दोपहर । वियोग के कारण से जोन्हाई महाविष की ज्वालों से परिवेष्टित (ढकी हुई) समझ पड़ती है ।

महूष या महोष भारद्वाज-पक्षी का नाम है । उसकी बोली की ध्वनि अहूष की-सी होती है । अतएव अहूष एक ध्वन्यात्मक शब्द है, जो भारद्वाज-पक्षी की कर्कश बोली प्रकट करता है । यह बोली महुरेठी (माहुर अर्थात् त्रिष-पूर्ण) कही गई है । पद का प्रयोजन यह है कि नायिका को विरह-वश चाँदनी महोष की विष-पूर्ण ध्वनि से मिली हुई उसका अमृत-पान करने पर भी देखने में दुःखद है । वह चाँदनी दीप्ति छिपाने पर भी विरह-वश अँगीठी-से तप्त अंगों में दूसरी अँगेठी की अग्नि-सी होती है । विरह-वश नायिका को कार्तिक-चंद्र-ज्योत्स्ना-पूर्ण रात ऐसी बुरी लगती है, मानो वह जेठ मास की गरम रात से भी उष्णता में जेठी (अधिक) हो । वह रात जुठैल (जूठी, अशुचि),

जठेरी (अप्रिय, नटखट) तथा जम जोय (यमराज की-सी स्त्री, प्राणाकर्षिणी) है ।

दूसरे पद में चाँदनी के साथ अमृत-पान का इसलिये कथन किया गया है कि चंद्रमा के सुधाधर होने से वह सुधाकर या सुधांशु भी है, जिससे चाँदनी के दर्शन से मानो उसका अमृत-पान होता है । नायिका को विरह-वश चाँदनी से कोई मज़ा आता नहीं, प्रत्युत चाँदनी रात में महूष क्री अहूष-ध्वनिवाली कर्कशता-मात्र उसके चित्त में सर्वोपरि बात रह जाती है ।

केते करे सुकपोत कपोतक पिंजर - पिंजर बीच बिबादनि॥
को गनै चातक चक्र चकोर कला पिक मोर मराल प्रबादनि‡;
बीन उयों बो नति बाल प्रबीन नबीन सुधा-रस-बाद सवादनि\$,
बारों सुकंठी के कंठ खुले॥ कलकंठन के कलकंठ निनादनि॥४६॥

नायिका की वाणी की प्रशंसा की गई है । बाद = संभाषण । वारों = निछावर करूँ । सुकंठी के = एक सुंदर तोता, जिसके गले में कंठी होती है । कलकंठन के = सुंदर गलेवालों (शब्द करने वालों) के ।

॥ छोटे-बड़े कबूतरों ने पिंजड़े-पिंजड़े में कितना ही विवाद किया (किंतु उम नायिका की वाणी की सरबरी वे न कर पाए) ।

‡ (उसकी वाणी के सामने) चातक (पीपहा), चक्र (चकई-चकवा) और चकोर (चंद्र को ताकनेवाला पक्षी) की कला तथा पिक (कोकिला), मयूर एवं मराल (हंस) की ध्वनियाँ गिनने योग्य नहीं हैं ।

§ अमृत-रस का स्वाद तुच्छ है ।

॥ ताँते का कंठ खुला कहा जाने से उसके जवान हाने का आशय है, क्योंकि यौवन-प्राप्त ताँते की कंठी खूब खिलती है ।

केसरि किंसुक औ' बरना॥ कचनारनि को रचना उर सूली ,
 सेवती देव गुलाब मलै‡मिलि मालती मल्लि मलिंदनि हूली ;
 चंपक दाडिम नूत महांउर पाँडर डार डरावनि फूली ,
 या मयमंत\$बसंत मैचाहत कंत चलयो हमहीं किधौं भूली॥५०॥

मल्लि = बेला । नूत = नूतन, नवीन । पाँडर = एक प्रकार की पीली चमेली । पाँडर स्वयं डरानेवाली नहीं है, किंतु विरह के कारण व्याकुलता प्रकट करने से डरानेवाली कही गई है । इस पद का अन्वय यों है—महानूत चंपक दाडिम उर डरावनि पाँडर डार फूली ।

उर सों लगी ही बधू बिधुर अधर चूम ,
 मधुर सुधान बातें सुनिवे सुभाव की ;
 बोलि उठीं कोकिला त्यों काकलिनु कलित
 कलापिन की कूकै कल कोमल बिराव कीX ।

॥ पुष्प वृक्ष-विशेष ।

‡ मलै = मलय-पर्वत, जहाँ चंदन होता है । इसी से मलय को भी मलयज मानकर चंदन कहते हैं ।

\$ उन्मत्त ।

॥ प्रयोजन यह है कि इतने कामोदीपक समय में पति कैसे जा सकता है, सो यद्यपि उसके जाने का विचार प्रकट हो चुका है, तथापि नायिका समझती है कि उसके यथार्थ मानने में वह स्वयं भूल करती होगी, क्योंकि वह सत्य नहीं होगा ।

X सुंदर मुलायम स्वर की कोकिला, मधुर तथा सुंदर मोरों की कूकै बोल उठीं (आवाज़ करने लगी) । काकली = सूक्ष्म मधुर स्फुट ध्वनि ।

आइ गईं भूकें मंद मारुत की देव नव-

मल्लिका मिलित मल पदुम के दाव की ;

ऊखली सुवासु गृह अखिल खिलन लागीं ,

पलिका के आस-पास कलिका गुलाब की ॥ ५१ ॥

प्रातःकाल का वर्णन है । कलित कलापिन=सुंदर मयूरों की । बिराव की=ऊँचे स्वर में बोली की । बिधुर=काँपता हुआ । मल = मकरंद । मिलित मल पदुम के दावकी = कमल-वन के मकरंद-सहित । ऊखली = उखरी = फैली ।

स्याम के संग सदा हम डोलें जहाँ पिक बोलें, अलीगन गुजें, लाहनि माह उछाहनि सों छहरें जहँ पीरी पराग की पुंजें ; बेलिन में, रसकेलिन में, कवि देव कछू चित की गति लुंजें, कालिंदी-कूल महा अनुकूल ते फूलतीं मंजुल बंजुल कुंजें ॥ ५२ ॥

लाहनि माह = मंगल से, अर्थात् आनंद-सहित । उछाहनि सों= उत्साह-सहित । बंजुल = अशोक-वृक्ष ।

(६)

समीर

अरुन उदोत सकरन है अरुन नैन

तरुन-तरुन तन तूमत फिरत है❀,

कुंज-कुंज केलि कै नबेली बाल बेलिन सों

नायक पवन बन भूमत फिरत है ;

❀ प्रातःकाल अरुण के उदय में होकर (निकलकर) (रात के जगे हुए) लाल नेत्रवाले प्रत्येक युवक का शरीर धुनता फिरता है, अर्थात् प्रातःकाल इनका अपनी प्यारियों से वियोग हो जाता है, जिससे सुखद पवन भी उनको दुखद हो पड़ता है ।

अंब-कुल बकुल समोड़ि पीड़ि पाड़रनि
 मल्लिकानि मीड़ि घन घूमत फिरत है*;
 दुमन-दुमन दल दूमत मधुप देव†,
 सुमन-सुमन सुख चूमत फिरत है ॥ ५३ ॥

अंब-कुल=आम-वृक्षों का समूह। पाड़रनि=पाँड़री (एक पुष्प) ।
 दुमन=वृक्षों (द्रुमों) को। तूमत—यह शब्द 'तूमना'-क्रिया-पद
 से लिया गया है, धुनते हुए का प्रयोजन है। विरह-वेदना व्यंजित
 की गई है। सकरन = सकारे; प्रातःकाल। समीड़ि = सम्यक्-
 प्रकारेण मीड़ि (मलकर)। दूमत = हिलाता हुआ। यहाँ दूमत
 को देहलीदीपकन्यायेन द्रुमों तथा भ्रमर, दोनों पर आरोपित करके
 यह भी अर्थ कर सकते हैं कि वृक्षों तथा भ्रमरों, दोनों को पवन
 हिलाता है।

सजोगिन की तू हरै उर-पीर, बियोगिन के सचरे उर-पीर,
 कली न खिलाइ करै मधु-पान, गलीन भरै मधुपान की भीर;
 नचै मिलि बेलि बधूनि अचै सुरदेव नचावति आधि अधीर,
 तिहू गुन देखिए दोष-भरो अरे सीतल, मंद, सुगंध समीर॥५४॥

सचरै=बढ़ावे, उत्तेजित करे। मधुपान (मधुप)=भौरों को।
 अचै=तप्त करके। आधि=मानसिक व्यथा।

* चमेली के फूलों को मलकर (उनकी सुगंध से) घना
 (होकर) घुमता फिरता है।

† भौरों का देवता पवन। पवन के संसर्ग से भ्रमरों के प्रिय
 पुष्प प्रसन्न होते हैं, सो भ्रमर का पवन हितकर देवता हो सकता है।

(७)

चंद-चाँदनी

नगर निकेत रेत खेत सब सेत-सेत,
 ससि के उदेत कछु देत न दिखाई है;
 तारकाॐ मुकुत-माल झिलमिलि झालरनि
 बिमल बितान नभ आभा अधिकाई है ।
 सामोद प्रमाद ब्रज-बीथिन बिनोद देव
 चहूँ कोद चाँदनी की चादरि बिछाई है;
 राधा मधुमालतिहि माधव मधुप मिल
 पालिक पुलिन भीनी परिमल भाई है ॥ ५५ ॥

राधा और माधव के मिलन का वर्णन है । निकेत = घर । रेत = बालू । बितान = चाँदनी (चँदोवा) । सामोद = आमोद (आनंद)-सहित । पालिक = पलंग । पुलिन = रेतीला नदी का किनारा । परिमल = पराग ।

राधा मधुमालती (फूल) है, जिसे भ्रमर रूपी माधव मिले हैं । पुलिन ही पलका है, तथा उस पर पराग ही हल्का उजियाला है ।

आस-पास पूरन प्रकास के पगार सूभें,
 बनन अगार डीठ गली हैं निचरते ‡ ;

ॐ तारे ।

‡ वनों, भवनों, गलियों में दृष्टि से निवृत्त होते हैं, अर्थात् नज़र में गुज़र जाते हैं । अगार = भवन ।

पारावार पारद अपार दसौ दिसि बूझी,
 बिधु बरम्हंड उतरात बिधि बरते॥
 सारद ‡ जुन्हाई जहू पूरन सरूप धाई,
 जाई सुधा सिंधु नभ सेत गिरि बरते\$;
 उमड़ो परतु जोति मंडल अखंड सुधा
 मंडल मही में इंदु-मंडल बिबरते ॥ १६ ॥

परम नवीन विचार ।

कातिक पूर्यो कि राति ससी दिसि पूरब अंबर में जिय जान्यो,
 चित्तभ्रम्यो पुमनिंदु मनिंदु फनिंदु उठयो भ्रम ही सों भुलान्यो ;
 देव कछू बिसवास नहीं, सोइ पुंज प्रकास अकास में तान्यो,
 रूप-सुधा अखियान अँचै निहिचै मुखराधिका को पहिचान्यो । १७ ॥

॥ उस प्रकाश में पारावार (समुद्र), पारा तथा अपार दसौ दिशाएँ डूब गईं, एवं चंद्रमा अथवा ब्रह्मांड उसी में ब्रह्मा के वरदान से उतराते हैं । प्रयोजन यह है कि वह प्रकाश का पुंज अपार है ।

‡ श्वेत गिरिवर के सुधा-सिंधु से उत्पन्न जहू की शारदी जुन्हाई (गंगाजी को शरद् की ज्योत्स्ना कहा गया है) पूर्ण रूप से धाई । प्रयोजन यह है कि गंगा-रूपी ज्योत्स्ना भी उसी प्रकाश-पुंज से निकली है, जिस प्रकाश का अंश श्वेत गिरि पर सुधा-सरोवर के रूप में स्थित है ।

§ कवि ने इस छंद में यह विचार लिखा है कि संसार में प्रकाश पुंज सर्वत्र व्याप्त है, किंतु आकाश-रूपी पर्दा उसे पृथ्वी पर आने नहीं देता । उसी पर्दे में चंद्रमा एक छिद्र है, जिसमें से होकर वह प्रकाश-पुंज सुधा-मंडल के समान पृथ्वी पर उमड़ा पड़ता है ।

॥ पाठांतर—“शारद जुन्हाई जहू जाई धार सहसहु ।”

पुम.नेंदु = पूर्ण + इंदु = पूर्णेन्दु = पुमनेंदु = (पूर्णिमा का चंद्रमा)
म.नेंदु फ.नेंदु = चंद्रकांत-सी मणि धारण करनेवाला सर्प ।
अंचै = पान करके ।

पहले राधिका का मुख देखकर भगवान् उसे पूर्व दिशि में उदित कार्तिकी पूर्णिमा का चंद्र समझे, किंतु जब मणि-मंडित केश-पाश उस चंद्र से मणि-युक्त सर्प की भाँति उठता हुआ दिखाई दिया, तब उनका चित्त भ्रम में पड़ा, और उसी भ्रम से भूल गया । जब वैसा ही प्रकाश-पुंज आकाश में भी पूर्ण चंद्र के कारण तना हुआ दिखाई दिया, तब कुछ विश्वास न पड़ा कि ये दो चंद्र कहाँ से आए । अनंतर आँखों से रूप-अमृत-सा पीकर उन्होंने निश्चय-पूर्वक राधिकाजी का मुख पहचाना ।

फटिक सिलानि सों सुधारयो सुधा-मंदिर,

उदधि दधि को-सो अधिकाई उमगै अमंद ;

बाहेर ते भीतर लौं भीतिन देखै देव,

दूध को-मो फेनु फैलो आँगन फरसबंद ।

तारा-सी तरुनि तामैं ठाढ़ी भिलमिलि होति,

मोतिन की जोनि मिली मल्लिका को मकरंद ;

आरमी-से अंबर मैं आभा-सी उज्यारी लगै,

प्यारी राधिका को प्रतिविंब सो लगत चंद्र ॥ ५८ ॥

प्रतीप-अलंकार ।

फटिक = स्फटिक, बिल्लौर ।

(८)

विनोद

गूजरी ऊजरे जोवन को कछु माल कहौ दधि को तब दैहौ,
देव इतो इतराहु नही, ई नहीं मृदु बोल न मोल बिकेहौ ;
मोल कहा, अनमोल बिकाहुगी, ऐंचि जबै अधरा-रसु लेहौ ,
कसी कहो फिर तौ कहौ कान्ह अबै कछू होहूँ ककाकि सौँ कैहौ ॥१६॥

नायक — हे गूजरी, उज्ज्वल जोवन का कुछ मोल कहो, तब हम दधि देवेंगे (वापस करेंगे) । प्रयोजन यह है कि उन्होंने दहेबी छीन ली थी, जिसके फेरने का प्रश्न है ।

नायिका—इतना मत इठलाओ । न तो इन मृदु बोलों से बिकूँगी, न मोल से ।

नायक—मोल की बात ही क्या है, जब मैं तुम्हें खींचकर तुम्हारा अधर-रस लूँगा, तब तुम बिना मोल ही बिक जाओगी ।

नायिका—हे कृष्ण, कैसा कहा, फिर तो कहो । काकाजी की शपथ खाकर कहती हूँ कि अभी मैं भी कुछ कहूँगी ।

आइ खुभीखिरका मैं खरीखिन-ही-खिन खीन सखीन लखाहीं,
चाह भरी उचकै चित चौंकि चितै चतुगई उतै चित चाहीं ;
बातन हो बहरावति मोहि, विमोहित गातन की परछाहीं ,
ओड़ी किए उर ऐड़ती हो भुज ऐंड़ि कहुँ उड़ि जैहौ तौ नाहीं ॥१७॥

खिन-ही-खिन = क्षण-क्षण में । खीन = क्षीण, दुर्बल । चितै चतु-
गई = चतुराई से देखकर । उतै चित चाही = उस तरफ चित ने
चाहा । बहरावति = बहलावति है । गातन की परछाँही = श्याम के
शरीर की छटा । ओड़ी किए = आड़ देकर । ऐड़ती हो = ऐंड़ाती हो ।

❀ गद्दी अर्थात् देर से खड़ी ।

अंगन उधारौ जनि लंगर लगेई माँग-
मोती-लर टूटत लरकि आई लुरकी ;
देव कर जोरि कर अंचर को छोड़ गहि,

छाती मुठि छूटति न नीठि ठनि डुरकी ।
आँसू दग पूरि भ्रमपूर चकचूर ह्वै ॐ,
कहति प्यारी दोऊ भुज दीने ओट उर की ;
मरी जाति लाजन अकाजन करैया देया,

छाँड़ि दे अनोखे नाँह, बाँड़ जाति मुरकी ॥ ६१ ॥

लंगर = नायक के लिये संबोधन, हे ठीठ छैल । लरकि आई = लटक आई । लगेई माँग मोती = माँग में मोती लगे हुए हैं । लुरकी = माँग में लटकनेवाला मोती का ज़ेवर । डरकी = भरनी, जुलाहों का एक औज़ार, जिससे वे लोग बाने का सूत फेकते हैं । छाती मुठि छूटति न नीठि ठनि डरकी = आपकी मुठि (मूठ) कठिनता से भी छाती से नहीं छूटती; भरनी की तरह इधर-उधर आती-जाती है ।

ठनि डुरकी = ठनकर (कार्य में रत होकर) मानो डरकी हो गई । प्रयोजन यह है कि भरनी के समान कार्य करती है ।

रन्ध्यो कचमौरसुमोर-पखा धारिकाक-पखा मुख राखि अराला†,
धरी मुरली अधराधर लै मुरली सुर लीन है देव रसाल ;
पितंबर काछनी पीत पटी धरि बालम-बेष बनावति बाल ,
सरोजन खोज निवारन की उर पैन्ही सरोजमई मृदु माला ॥ ६२ ॥

ॐ पूरे विभ्रम में चकनाचूर होकर ।

† कुटिल ।

नायिका नायक (कृष्ण) का वेश धारण करके विनोद करती है । छंद के चतुर्थ चरण में सामान्य अलंकार है ।

कच = केश । काक-पखा = काक-पक्ष = कुल्लै ।

(६)

पावस

सुनि कै धुनि चातकमोरनिकी चहुँ ओरनि कोकिल कूकनि सों,
अनुराग-भरे हरि बागनि मैं सखि रागत राग अचूकनि सों ;
कबि देव घटा उनई जु नई बनभूमि भई दल दूकनि सों,
रँगराती हरी हहराती लता झुकि जाती समीर के झूकनि सों ॥ ६३ ॥

पावस-ऋतु का वर्णन है ।

अचूकनि सों = पड़ता-सहित । उनई = उदित हुई । दूकनि = दो-एक । हहराती = ध्वन्यात्मक शब्द ।

पावस प्रथम पिय ऐवे को अवधि सौ जो,

आवत ही आवैं तो बुलाऊँ अति आदरनि ॥

नाहीं तौ न हील होन दे रा भोल भावरनि,

ग्रीषमहि राखु खाली भाखु खल खादरनि ।

बीजुरी बरजु, कहु मेघ न गरजु,

इन गाजमारे मोर - मुख मोरि री निरादरनि;

कंठ रोकि कोकिलनि, चोच नोचि चातकनि,

दूरिं करि दादुर, बिदा करि री बादरनि ॥ ६४ ॥

❀ पहले ही पावस में प्रियतम के आने की अवधि थी । सो यदि पावस के आते ही वह भी आवैं, तो पावस (वर्षा) को भारी आदर से बुलाऊँ । खादर खल इस कारण से कहे गए हैं कि उनके कारण बुझार बढ़ता है, तथा अन्य कष्ट होते हैं ।

नायक की अनुपस्थिति के कारण नायिका पावस का निरादर करती है। बड़ा सबल छंद है।

ऐबे की अवधि = आगमन का नियत समय। हील = कीचड़।
भाबर = दलदल। खादर = वह नीची ज़मीन, जिसमें वर्षा का पानी बहुत दिनों तक रुका रहता है। बरजु = रोक।

नाचत मोर, नचावत चातिक, गावत दादुर आरभटी॥ मैं,
कोकिल की किलकार सुने धिरही बपुरे बिष घूँटें घटी मैं;
अंबर नील घनी घनमाल सु भूमि बनी बनमाल तटी मैं †,
साँवर पीत मिले भलकैं घन दामिन से घन स्याम पटी मैं ॥६५॥

विरह उत्पन्न करनेवाले पदार्थों तथा कारणों का वर्षा के संबंध में वर्णन है। बपुरे = बेचारे, अनाथ। 'बराक' (सं०)-शब्द से बना है। पटी = पर्दा। घटी = छोटा घट (शरीर)।

उतै तो सघन घन धिरि कै गगन, इतै

बन-उपवन बन बनक बनाए हैं;

तेसेई उलहि आए अंकुर हरित-पीत,

देव कहै विविध बटोहिन सुहाए हैं।

बोलैं इत मोर उत गरजैं मधुर धुनि,

मानौ मैन-भूष जग जीति घर आए हैं;

॥ आरभटी एक वृत्ति है, जिसमें टवर्ग-पूर्ण ओज की विशेषता रहती है। मेंढकों की टर्-टर् बोली में आरभटी-वृत्ति का उदाहरण कवि ने माना है।

† वनों की माला (बहुत वनों) के तट में भूमि सुंदरी बनी है।
धने काले पर्दे में साँवले और पीले बादल बिजली-से झलक रहे हैं।

अंबर बिराजै बर, अंबरन छाए छिति,

पीरे, हरे, लाल, ये जवाहिर बिछाए हैं ॥६६॥

वर्षा में प्रकृति-वर्णन ।

बनक = एक प्रकार का कपड़ा, जिसे साटन कहते हैं । उलहि = उग आए । अंबरन = मेघ । वर्षा का सादृश्य विजयी मैदान-महीप से दिखलाया गया है ।

आजु अभै सुघरी उघरी भ्रम*काज-निमित्त सुचित्त चलाकिन ,
चाहत नाह चलो परदेश को नाहक नाह कहो अबला किन †,
देव सरोग उठी सगुनै कहि कामिनि दामिनि सोन-सलाकिन ‡
भूमरही बनमालिनि § भूमि पै घूमरही घन-मालबलाकिन ॥६७॥

सोंखे सिंधु सिंधुर से बंधुर ज्यों बिध्य, गंध-

मादन के बंधु से गरज गुरवानि के ;

* बाहर चलने का विचार ही भ्रम-काज है । उसके लिये पति का चित्त भले ही चला, किंतु वर्षा आ जाने से अच्छी घरी उघर आई, और गमन रुक गया ।

† पति परदेश को चलना चाहता है, उससे अबला (नायिका) हे नाथ ! यह नाहक है, ऐसा भले ही कहे (पत्नी के मना करने पर भी पति परदेश जाना चाहता था, तब तक वर्षा के उमड़ आने से अच्छी घड़ी आ गई) ।

‡ सोन-सलाकिन (स्वर्ण की-सी शलाका) दामिनि (बिजली) को सगुन कहकर सरोग कामिनी (वियोग के भय से रोग-पीड़िता नायिका) उठी (रोग-शय्या से आराम होकर उठ खड़ी हुई) ।

§ बनमालवाली नायिका (वह नायिका, जो वन के फूलों की माल पहने है) ।

भ्रमकारे भ्रूमत गगन घने घूँमत,
 पुकारे मुख चूमत पगीहा मोरवानि के ।
 नदी-नद सागर डगर मिलि गए देव,
 डगर न सूभत नगर पुगवानि के;
 भारे जल - धरनि अँध्यारे धरनी - धरनि
 धाराधर धावत धुमारे धुगवानि के ॥ ६८ ॥

सिंधुर = हाथी । बंधुर = सुंदर तथा नम्र (मेघों के झुकने से
 उनको एवं उँचाई न पकड़ने से विन्ध्य को नम्र कहा है) ।

गंधमादन = एक पर्वत का नाम । पुराणानुसार यह पर्वत इला-
 वृत और भद्राश्रवखंड के बीच में है । गुरवानि = भारी । भ्रमकारे =
 भ्रमाभ्रम बरसनेवाले (बादल) । जलधरनि = मेघ । धरनी-धर =
 भूधर, पर्वत । धाराधर = मेघ । धुमारे = धूमिल, धुएँ के रंग के ।

(१०)

हिंडोरा

आली झुलावति भूँकनि सों भुँक जाति कटी झननाति भ्रकोरे,
 चंचल अंचल की चपला, चलबेनी बड़ी सो गड़ी चित चोरे ;
 या विधि भूजत देखि गया तब ते कबि देव सनेह के जोरे,
 भूलत है हियमा हरि को हिय माहँ तिहारे हरा के हिंडोरे ॥ ६९ ॥

भूँकनि = भोंको से । झननाति = कटी में की किकिनी शब्द
 करती है । भ्रकोरे = भोंके के वेग से । चंचल अंचल की चपला =
 बिजली के समान फड़कता हुआ अंचल । शब्दार्थ यह है कि यह
 चंचल अंचल है, या चपला । चलबेनी = हिलती हुई बेणी ।

भूलति ना वह भूजति बाल की, फूलनि-माल की लाल पटी की,
 देव कहै लचकै कटि चंचल, चोरी दृगंचल चाल नटी की ;

अंचल की फहरानि हिए रहि जानि पयोधर पीन तटी की ,
किंकिनि की भननानिभुजावनि,भूकनि सों भुकि जानि कटी की ।

लाल पटी = लाल रंग का कपड़ा । पीन तटी = पुष्ट किनारेदार ।

भूलनिहागी अनोखी नई उनई रहतीं इत ही रँगराती ,
मेह में ल्यावैसु तैभियै संग की रंग-भरी चुनरी चुचुवाती॥
भूला चढ़े हरि साथ हहा करि देव भुजावति ही ते डराती† ,
भोर हिंडोरे की डोगिन छाँड़ि खरे ससवाइ गरे लपटाती॥७१॥

ससवाइ = सीत्कार करके, डरकर ।

(११)

वसंत और फाग

आइ बसंत लग्यो बर सावन नैनन ते सरिता उमहै री,
कौ लागि जीव छमावै छपा में छपाकर की छवि छाई रहै री ;
चंदन सों छिरकें छतिया अति आगि उठे उर कौन सहै री ,
सीतल, मद सुगंध समीर बहै, दिन दूगुनी देह दहै री ॥७२॥

उमहै री = उमगती है । छमावै = सहन करावै । छिरकें =
सींचें । बर सावन = श्रेष्ठ श्रावण । वसंत आकर अच्छा सावन लग
गया, अर्थात् वसंत मानो सावन हो गया ।

(हे सखि !) वसंत-ऋतु आते ही नैनों से ऐसा जल-प्रवाह हो चला
है, मानो वह सावन है , और वह प्रवाह नदी होकर उमड़ता है ।

केकी-कुल कोकिल अलापै कल कंठ धुनि ,
कोलाहल होत सुकपोत मयमंत को ;

॥ चूनरि मेघ के कारण टपकती है, क्योंकि पानी बरस चुका है ।

† भुलाती है, किंतु हृदय से डरती भी है ।

कूले कमलन पर नाचत बिमल अलि ,
 कमला बिसाल मैं प्रकास रति-कंत को ।
 त्रिविध समीर चलै, सजल सरीर देव,
 सुखद निनाद बाद आनंद अनंत को ;
 भीतरे भवन बास रहै उपवन औ'

शिशिर निशि बास रहै बासर बसंत को ॥७३॥

मयमंत = उन्मत्त (मद-युक्त) । कमला = विभूति । निनाद = शब्द । बाद = व्यर्थ । इस आनंद के सामने ब्रह्मानंद-पर्यंत व्यर्थ है ।
 फूजे अनारन पाँडर डारन, देखत देव महाडरु माँचै ,
 माधुरी भौरन अंब के बौरन भौरन के गन मंत्र-से बाँचै ;
 लागि उड़ै बिरहागिन की कचनारन बीच अचानक आँचै ,
 साँचे हुँकारि पुकारि पिकी कहै नाचे बनैगी बसंत की पाँचै ॥७४॥

फूलि उठो वृंदावन, भूलि उठे खग, मृग
 सूलि उठे, चर बिरहागि बगवाई है ;
 गुंजरै करत अलि-पुंज कुंज-कुंज धुनि,
 मंजु पिक-पुंज नूत मंजरी सुहाई है ।
 बाल बनमाल फूल-माल बिकसंत बिह-
 संत मुखी ब्रज मैं वसंत-ऋतु आई है ;
 नंद के नंदन ब्रजचंद को बदन देखे

सदन-सदन देव मदन - दुहाई है ॥ ७५ ॥

❀ शिशिर निशि भीतरे भवन बास रहे औ' बासर बसंत उप-
 वन बास रहे । प्रयोजन यह कि शिशिर की निशि में भवन की
 मुख्यता है, और वसंत के दिन में उपवन की ।

भूलि उठे खग = पक्षीगण भूल गए हैं, अर्थात् इतना अहार-विहार का आधिक्य हुआ कि उनको दिशा-भ्रम भी होने लगा। मृग सूलि उठे उरआदि = हिरनों के हृदय में विरहाग्नि* दहकने लगी, क्योंकि पतझड़ हो जाने के कारण उनकी एकत्र स्थिति नहीं रही। सीतल, मंद, सुगंध खुलावति पौन डुलावति को न लची है, नौल गुलावनि बौल फुलावनि जोन-कुलावनि प्रेम पची है; मालती, मल्लि, मलेज, लवंगनि, सेवती संग समूह मची है, देव सुहागनि आजु के भागनि देखुरी, बागनि फागु मची है॥७६॥

प्रकृति में फाग का रूपक बंधा है।

नौल = नवल = नवीन। कौल (कौल) = कमल। जोन-कुलावनि (जोन्ह + कुल + अवनि) = चाँदनी के समूह से युक्त पृथ्वी; यहाँ चाँदनी के फैलने तथा गुलचाँदनी-जाति के पुष्पों के फूलने से प्रयोजन है। सची = संचित।

माधुगी भोरनि फूलनि भौंगनि बौरनि-बौरनि बेलि बची है*, केसरि किसु कुसुंभ कुगै किरवार कनैर निरंग रची है; फूले अनारनि चंपक-डारनि लै कचनारनि नेह तची है, कोकिल रागनि नूत परागनि देखुरी, बागनि फागु मची है॥७७॥

प्राकृतिक शोभा में फाग का चित्र।

भोरनि = गुच्छों में। बौरनि = (१) बौराण दुण, (२) मंजरियों में। कुगै (कुरैया) = एक वृक्ष जो जंगलों में हांता है, और जिसकी पत्तियाँ लंबी और लहरदार हांती हैं। इसमें लंबे और सुगंधित फूल लगते हैं, जो सफ़ेद, लाल-पीले और काले या नीले रंग के होते हैं। इन फूलों के गुण वैद्यक-शास्त्र में पृथक्-पृथक् माने गए हैं।

किरवार = अमलतास।

* प्रयोजन यह कि बेलि का रूप भर दिखता है तथा वह उपर्युक्त वस्तुओं से पूर्णतया ठकी सी है।

लोग-लुगाइन होरी लगाइ मिलामिनी चारु न मेटत ही बन्यौ,
देवजू चंदन-चूर कपूर लिलारन लै लै लपेटत ही बन्यौ ;
ये इहि औसर आए इहाँ समुहाइ डियो न समेटत ही बन्यौ ,
कीनी अनाकनि औमुखमोरिपैजारिभुजाभट्टभेंटतहीबन्यौ॥७८॥

गुसा नायिका है । चारु = चार, चाल, रस्म । समुहाई = सामने आने पर ।

आगा कमें, उकसैं कुच ऊँचे, हँसैं-हुलसैं फुँफुदीन की फूँदें,
चंदन ओट करे पिय जोट, पै अंचल ओट दगंचल मूँदें ;
देवजू कुंकुम केसरि की मुख-बारिज बीच बिराजती बूँदें,
बाढ़यो बिनोद गुलाल लैगं दनिमोद-भरीचहुँकोदनि कूँदौ॥७९॥

ओट = तिलक, आड़ । मुख-बारिज = मुखारविंद । जोट = सहचर नायिका कं । हुलसैं = आनंदित होती हैं । फुँफुदीन की फूँदें हुलसैं = अंगिया या नीवी की गाँठें खुलने को चाहती हैं । कोदनि = ओर, पक्ष ।

कछु और उपाय करै जनि री इतने दुख क्यों सुख सों भरिबी*,
फिर अंतक सो विन कंत वसंत के आवत जीवत ही जरिबी† ;
बन बोलत बोरो ह्व जाउँगी देव सुने धुनि कोकिल की डरिबी,
जब डातिहैं और अवीर भरी सुहहा ‡ कहिबीर कहाकरिबी‡॥८०॥

* हे सखी ! कुछ और उपाय करना (अर्थात् अवश्य कर), क्योंकि इतने दुःख किस प्रकार सुख से पूरे होंगे ?

† एक वसंत विरह में बीत चुका है, किंतु उसके यमराज-समान फिरकर (दूसरी बार) आते ही जीते-जी जल जाऊँगी ।

‡ जब और सखियाँ अवीर से भरकर डोलेंगी (अर्थात् शोलिकोत्सव आवेगा), तब क्या करूँगी, सो हे सखी, कह ।

भरिबी = पूरा करूँगी, वितीत करूँगी । अंतक = यम । और = दूसरी (सखियाँ) । बीर = हे सखी !

(१२)

रास

फँकि-फूँकि मंत्र मुरली के मुख जंत्र कीन्हो
प्रेम परतंत्र लोक लीक ते डुलाई है ;

तजे पति मात तात गात न सँभारे कुल-
बधू अधरात बन भूमिन भुलाई है ।

नाथ्यो जो फनिंद इंद्रजालिक गोपाल गुन,
गाड़रूँ सिंगार रूपकला अकुलाई है ;

लीलि-लीलि लाज दृग मीलि-मीलि काटीं कान्ह,
कीलि-कीलि ब्यालिनी-सी ग्वालिनी बुलाई है ॥८१॥

कवि कृष्ण को इंद्रजाली बनाकर ब्यालिनी-गोपियों का आकर्षित
हो आना वर्णन करता है ।

कीलि-कीलि = विवश कर-करके ।

घोर तरु नीजन बिभिन तरुनीजन है
निकसीं निसंक निसि आतुर अंतक मैं ;

गन न कलंक मृदु-लंकनि मयंक - मुखी
पंकज-पगन धई भागि निसि पंक मैं ।

भूषननि भूलि पैन्हे उलटे दुकूल देव ,
खुले भुजमूल प्रतिकूल बिधि बंक मैं ;

❁ सर्प का पकड़नेवाला या उसका विष उतारनेवाला । ऐसे मंत्र में गरुड़ की हाँक दी जाती है, इसी से उस मंत्र-विद्या का नाम गारुडि है ।

चूल्हे चढ़े छाँड़े रफनात दूध-भाँड़े, रन
पूत छाँड़े अंक पति छाँड़े परजंक मैं ॥ ८२ ॥

आतुर = जल्दी में, अधीर । अतंक (आतंक) = प्रताप, रोब ।
लंकनि = कटिवाली ।

निर्जन वन में होती हुई, चरण-कमलों से कीचड़ मँभाती हुई रात
में दौड़कर गई । प्रतिकूल बिधि बंक मैं = टेढ़ी एवं उलटी रीति से ।

इस छंद में विलास तथा विभ्रम हावों की अच्छी बहार है ।
विभ्रम में उलटे भूषणादि का विषय होता है, और विलास हाव
में गमनादि में विशेषता ।

गोकुल नरिंद्र इंद्रजाल सो जुटाय ब्रज-
बालनि लुटाय कै छुटाय लाज-दामु सों ;
बिज्जुलि-से बास अंग उज्जल अकास करि
बिबिध विलास रस हास अभिरामु सों॥
जान्यो नहीं जात, पंचान्योन विलात, रास-
मंडल ते स्याम, भासमंडल ते घामु सो ;

ॐ सुरंद रस और हँसी के साथ अनेक प्रकार के खेल करके
बिजली के समान कपड़े और उजले आकाश-सा शरीर करके ।
प्रयोजन यह है कि भगवान् सवस्त्र गायब हो गए । वसन बिजली-
से बिला गए, तथा शरीर उजला आकाश-सा हो गया, अर्थात्
सब कहीं है, और पकड़ा न जा सकने से कहीं भी नहीं । भगवान्
ने अनेक रूप रखकर रास रचा था । वे सब रूप आकाशवत् हो
गए, अर्थात् सब कहीं होकर भी कहीं न रहे । उजले आकाश कहने
का यह अभिप्राय है कि उसमें घनादि की ओट भी न थी । इसी
प्रकार भगवान् खुले में गायब हो गए ।

बाहनि के जोट काम कंचन के कोट गयो

ओट है दमोदर दुरोदर को दामु सो ॥ ८३ ॥

जुटाय = इकट्ठी करके । दामु = रस्सी (लाज का बंधन) ।
भासमंडल ते घामु सो = जैसे सूर्य की धूप देखते-देखते लुप्त
हो जाती है, वही दशा भगवान् की हुई । दुरोदर को दामु = ढपोर
शंख द्वारा वादा किया हुआ धन ।

कालिंदा के कूलनि तरुनि तरु - मूलनि

निहारि हरि अंग के दुकूलनि उघेरतीं ;

मल्लो॥ मलो† मालती नेवागी जाती‡ जूही देव,

अंबकुल, बकुल§ कदंबन मैं हेरतीं ।

ताल दैदैं तालनि तमालनि ¶ मिलत फिरैं ,

बालि-बोलि बाल भुज भेंटि भट भेरतीं ;

पुनकि-पुनकि पुलिननि + मैं पुलोमजा × सी

बिलपि बिनोकि कान्ह-कान्ह करि टेरतीं ॥ ८४ ॥

भट भेरतीं = धक्का खाती फिरती हैं ।

रास के अंतर्गत वियोग का बहुत अच्छा वर्णन है ।

॥ मल्लिका, बेला ।

† मलयज, चंदन ।

‡ चमेली ।

§ मौलसिरी ।

¶ कृष्ण खदिर (काले खैर का दरवृक्ष) ।

+ किनारों ।

× शची (पुलोमा से उत्पन्न) ।

(११)

कुछ राग-रागिनी

कोयल अलापी कुल नाचत कलापी, ताल
 बोलत बिसाल बोल चातक सुनायो है ;
 दामिनीन बीच उपवात गुन पीतमट ,
 मोतिन का हार बग-पाँति मन भाया है ।
 फूले मुख लोचन कमल कमलाकर ,
 मुकुट रवि जोति ताप बरषि सिरायो है* ;
 मोहै धुनि सरगमै † बगषा पहर चौथे
 मेघ तनस्याम घनस्याम बनि आयो है ॥ ८५ ॥

मेघ-राग का घनस्याम (श्रीकृष्ण) से रूपक बाँधा गया है ।
 राग का ही वर्णन मुख्य है । उपवीत गुन = यज्ञोपवीत (जनेऊ)
 के डोरे । बग-पाँति = बगलों की पंक्ति । कमलाकर = सरोवर ।
 सिरायो है = शांत किया है ।

द्वंद में अलापना, नाचना, ताल देना आदि भगवान् से संबद्ध
 हैं, तथा कोकिल, मयूर, पपीहा आदि मेघ से ।
 अंब के बौगन बरै विराजतीं, मौगसिरा सो धरीं भिरमौरी‡,
 इंदु-से सुंदर गाल कपोलन, बोल सुनाय करो पिक बोरी ;

* फूले लोचन कमल है, मुख सरोवर, मुकुट सूर्य, ज्योति
 ताप और बरसना सिराना (चित्तों को सिराना, ठंडा करना) हैं ।

† ध नी र ग म = धैवत, निषाद, रिषभ, गांधार, मध्यम, ये
 सब स्वर मेघ राग में आते हैं । स से सहित का प्रयोजन लेना
 चाहिए । यह राग खाडव-जाति का है । धुनि सरगम से भगवान्
 तथा राग, दोनों श्रोता को मोहित करते हैं ।

‡ मौलसिरी ही शिर पर मुकुट है ।

सेत दुकूलनि साँमरी बाम की पैनी चितौनि चुभै चित दोरी ,
 पूरन पुन्य सुराग मैं प्योधनी ॥ गाइए सीत निसागम गौरी ॥ ८६ ॥

बीरै = बीड़े । पिक बीरी = कोयल को पागल करना अर्थात्
 उसका बहुत बोलना । साँमरी (श्यामा) = यौवनमध्या ।

गौरी रागिनी का वर्णन है । छंद में उसके सामान, रूप, गाने
 के समय आदि का कथन है ।

साँवरी सुंदरि पीत दुकूल मु फूले रसाल की मूल लसंती ,
 लीन्हे रसाल की मंजरी हाथ, सुरंगित आँगी हिये हुलसंती ;
 पूरन प्रेम सुरंग मैं प्योधनी ‡ संग-ही-संग बिलोल हसंती ,
 है उत है उत ही दिन साँझ समौ करि राख्यो बसंत बसंती ॥ ८७ ॥

बसंती रागिनी का वर्णन है ।

लसंती = शोभा देनेवाली । हुलसंती = प्रसन्नता से भरी हुई ।
 है उत (हैवत) = हेमन्त-ऋतु ।

(१४)

उपमा-रूपकादि

पीक-भरी पत्तकैं भक्तकैं, अलकैं जु गड़ीं सु लसैं भुज खोज को \$,
 छाया रखी छबि छैल को छाती मैं, आप बनी कहुँ ओछे उरोज की ;

॥ ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद स्वरों से
 गौरी गाई जाती है । गौरी मालकौस की रागिनी (भार्या) है । उप-
 युक्त स्वरों का कथन “राग मैं प्योधनी” सूत्र से निकलता है ।

‡ स, रि, ग, म, ध, नी । संपूर्ण जाति ।

\$ नायक की पलकों में किसी अन्य नायिका के चुंबन से
 पीक लगी हुई है, जो झलक रही है, अथवा नायक के भुज में उसकी
 अलकें गड़ी हुई हैं, जो खोज के योग्य हैं, अर्थात् दृष्ट्य हैं ।

ताहि चितैबड़री अँखियानते ती की चितौनिचलीअतिओज की,
बालम ओर बिलांकिकै बाल दर्ई मनो चोट सनाल सरोज की॥

खंडिता नायिका का वर्णन है। अलकैं = बालों की लटैं। ती की = स्त्री की। सनाल = डंठल-सहित। कुच-छाप बनने से गाढ़ालिंगन तथा कुचों की कठोरता के भाव प्रकट होते हैं।

गोरी गरबीली बठो ऊँघत उधारे अग,
देव पट नील कटि लपटी कपट-सी;
भानु की फिरन उदैसानु कंदरा ते छूटी,
सोम-छवि करी तम-तोम पै दपट-सी।
सोने की सराँग स्याम पेटी ते लपेटी कटि,
पत्रा ते निकसि पुखराज की भपट-सी†;
नील घन धूम पै तड़ित-तुति घूमि-घूमि
धूँधरि सों धाई दाव पावक लपट-सी॥ ८६ ॥

नायिका की सूर्योदय (प्रकाश) से उपमा दी गई है। उदैसानु = उदयाचल का शिखर। तोम = समूह। सराँग = शलाका (रेखा खींचने की एक सीधी लकड़ी)। तड़ित = बिजली। दाव = दौरहा। धूँधरि = अँधेरा।

॥ पति की ओर नायिका ने देखकर ही मानो कमल-नाल-समेत कमल उसके मारा, अर्थात् उसका अधिकार किया। नेत्र कमल हैं, तथा निगाह ने जो दूरी पार की है, वही मानो कमल-नाल-सी रेखा बन गई है। नवीन उत्प्रेक्षा है।

† पत्रा हरा होता है, और पुखराज पीला। इसी कारण श्याम पेटी से पीत-शरीर की छवि की ऐसी उपमा कही गई है।

नील पट को कपट इस कारण से कहा है कि कपट का रंग भी काला होता है। प्रयोजन यह है कि नील वस्त्र श्वेत शरीर को ढके हुए है, सो मानो द्रष्टाओं से कपट करता है। कुछ अंग खुला है, और कुछ नील वस्त्र से आच्छादित है ; इसी से कहा गया है कि मानो उदयाचल से सूर्य की किरण ने निकलकर अच्छी शोभा द्वारा तम-समूह को दपट (डँट) दिया।

परिहास कियो हरि देव सुबाम को वा मुख बैन नच्यो नट ज्यों॥
करि तीखी कटाच्छ कृपान भयों मन पुरन रोष भरयो भट ज्यों ;
लपिताय गद्दी पट-पाटी करौं ट लै मान-महोदधि को तट ज्यों ,
कटु बोल सुने पटुता मुख की पट दै पलटो उलट्यो पट ज्यों॥६०॥

मुग्धा मानिनी नायिका का वर्णन है। परिहास = हँसी, ठट्ठा।
कृपान = खड्ग। पट (खट्वा) = खाट।

✽ नायक के परिहास करने से नायिका के मुख में वचन नट के समान नाचने लगे, अर्थात् बहुत प्रकार के उपालंभ-पूर्ण वाक्य उसने कहे। यह मुग्धान्व का सूचक भाव है। उसके कटाक्ष तलवार-से टेढ़े हो गए, और मन पूर्ण क्रुद्ध योद्धा की भाँति रोष-पूर्ण हुआ। उसने कपट लेकर मान-रूपी भारी समुद्र के कूल की भाँति पलंग (खाट) की पट्टी लिपटकर पकड़ ली, किंतु नायक के मुख-चातुर्य-प्रदर्शक (हँसी-भरे) कटु वैन सुनकर (मान-मोचन हो जाने से) नायिका (मुग्धान्व के कारण) पट की आड़ देकर उलटे कपड़े की भाँति शीघ्र पलट गई, अर्थात् नायक की ओर हो गई। मुख की पटुता से नायक ने जो कटु बोल कहे थे, वे विनय-गर्भित थे, जिनसे मान-मोचन हुआ। यहाँ यह संदेह उठ सकता है कि जब गुरु मान था, तब केवल विनय से उसका मोचन कैसे हो गया ? उत्तर यह है कि यहाँ मध्यम मान का कथन है, गुरु मान का नहीं। नायिका मान-महोदधि के

तट तक गई थी, किंतु महोदधि में उसने पैर नहीं रक्खा था, अर्थात् उसका मध्यम मान गुरु मान के निकट तक गया था, किंतु गुरु मान हुआ न था। उलटा पट लोग शीघ्रता से पलट देते हैं। इस छंद में नच्यो नट ज्यों और पलटी उलट्यो पट ज्यों में धर्म गुप्त है। उन्प्रेक्षाएँ बहुत श्रेष्ठ हैं, क्योंकि वे अर्थ को खूब समर्थ करती हैं।

राधिका-सी सुर-सिद्ध-सुता नर-नाग-सुता कबि देव न भू पर ,
चंद कौँ मुख देखि निछावरि केहरि कोटि तटी कटि हू पर ;
काम-कमान हू को भृकुटीन पे, मीन मृगीन हू को दृग दू पर ,
वारौंरी कंचन-कंज-कली पिकबैनी के ओछे उरोजन ऊपर॥६१॥

प्रतीप-अलंकार है। लटी = पतली।

देव न देवति हौँ दुति दूसरी, देखे हैं जा दिन ते ब्रज-भूप मैं ,
पूरि रही री बडी धुनि कानन,आनन आन न ओष अनूप मैं ;
ए अँखियाँ सखिया न हमारियै जाय मिलीं जलबुंद ज्यों कूपमैं,
कोटि उपाय न पाइए फेरि, समाय गईं रँगराय के रूपमैं॥६२॥

प्रेम का वर्णन है। न हमारियै = केवल हमारी नहीं हैं, वरन् दूसरे की भी हैं, क्योंकि उसी से मिल गईं।

दूध सुधा मधु सिंधु गँभीर ते, हीर जुपै नग-भीर लै आवै॥ ,

॥ दुग्ध, अमृत तथा मधु (मद्य या शहद) के समुद्रों को नग-भीर (पर्वत-पुंज) द्वारा मंथन करके यदि कोई पुरुष उनके सार पदार्थ ले आवे। जब साधारण समुद्र के मंथन से चौदह रत्न निकले, तब उपर्युक्त समुद्रों से अवश्य ही उत्तर पदार्थ निकलेंगे, यह अभिप्राय है। दूध से सफ़ेदी आई, अमृत से मीठापन और मधु (मद्य) से सुखी। दाँतों के लिये सफ़ेदी है, और ओठों के लिये मिठाई तथा सुखी।

बाल प्रवाल पला मिलिकै मनि मानिक मोतिन जोति जगावै॥
 लै रजनीपति बीच विरामनि, दामिनि-दीप समीप दिखावै,
 जो निज न्यारी उज्यारी करै तब प्यारी के दंतन की दुति पावै+ ।

नायिका के दाँतों की कांति का वर्णन है । संभावन-अलंकार है ।
 रूप के मंदिर तो मुख में मनि-दीपक-से दृग हैं अनुकूले‡, ,
 दर्पन में मनि, मान सलील, सुधाधर नील सरोज-से फूले§ ;

ॐ नवीन मूँगों के पल्ले में मणि-माणिक्य तथा मोती मिलकर जो ज्योति निकलती है, उसे यदि काँई जाग्रत् करे, अर्थात् प्रकट करे । ओष्ठों की लाली के लिये मूँगों तथा माणिक्य का विचार आया है, और दाँतों के लिये मणि तथा मोतियों का कथन हुआ है ।

+ चंद्रमा (मुख) के बीच विराम-चिह्नों (ओठों) को लेकर उन्हीं के निकट ऐसी बिजली की दीप्ति दिखलावे, जिससे केवल उजियालापन पृथक् किया गया हां (अर्थात् चकाचौंध करनेवाली चमक उसमें न हो), तो नायिका के दाँतों की शोभा का सादृश्य मिल सकता है । ओठों का रूप विराम-चिह्नों के समान है, और मुख की कांति चंद्रमा के समान ।

‡ तेरा मुख सौंदर्य का घर है, जिसमें, नेत्र मणि के दीपक-से प्रसन्न हैं ।

§ वे नेत्र आईना में मणि के समान दीप्तिमान हैं, जल में मछली के समान चंचल तथा चंद्रमा में नीले कमल-से फूले हैं । यहाँ आईना, जल और चंद्रमा मुख के स्थान पर हैं, तथा मणि, मीन और नील कमल नेत्र के लिये आए हैं ।

देवजू सूरमुखी मृदु कूल के भीतर भौर मनौ भ्रम भूले,
अंक मयंकज के दल पंकज, पंकज में मनो पंकज फूले॥६४॥

नायिका के रूप (नेत्रों) का वर्णन है ।

सूरमुखी = सूरजमुखी नाम का फूल । पंकज = कमल; एक
जगह मुख से तथा दूसरी जगह आँखों से अभिप्राय है ।

घूँघट खलत अबे ऊलटु हूँ जैहै देव,

उद्धत मनोज जग थुद्ध जूटि परेगो ;

ऐसी न सुगोक सिख को कहै अलोक बात,

लोक तिहुँ लोक को लुनाई लूटि परेगो † ।

दैयन दुगाव मुख नतरु तरैयन को

मंडनहु मटकि चटाकि दूटि परेगो ‡ ;

तो चितै सकोचि सोचिमोचि मृदु मूरछि कै,

छार ते छपाकरु छता-सो छूटि परैगो § ॥६५॥

❀ मानो मयंकज (बुध) के अंक (गोदी) में कमल-दल-से हैं (मुख के लिये बुध का कथन है, तथा नेत्रों के लिये कमल-दल का), तथा पंकज (मुख) में पंकज (नेत्र) फूले हैं ।

† ऐसी शिखा (दीप्ति) देवलोक में भी नहीं (अलौकिक दीप्ति) है, लोकोत्तर बात कौन कह सकता है ? सारा संसार (देखते ही) तीनों लोकों की सुंदरता लूटने लग जायगा ।

‡ टेढ़ा होकर चटाका दूट पड़ेगा । जो वस्तु दूटने को होती है, वह पहले टेढ़ी होकर तब दूटती है ।

§ तेरी ओर देखकर चंद्रमा संकुचित होकर, सोच करके, मोचि (लचककर) कुछ मूर्च्छित होकर अपनी सीमा से छाता की भाँति छूट पड़ेगा ।

नायिका के मुख की प्रशंसा है । प्रतीपालंकार की मुख्यता है ।
 उद्धत मनोज = काम से उन्मत्त । सुरोक (सुर+ओक) = देव-
 लोक । दैन्य = दैव के लिये । छोर ते = सीमा से (आकाश से) ।
 छाता = छाता ।

खंजन मीन मृगीन की छीनी टुंगंचल चंचलता निमिखा की ;
 देव मयंक के अंक की पंक निसंक लै कज्जल-लीक लिखा की ;
 कान्ह बसी अँखियान बिषे बिसफूगति बीस बिसे बिसिखा की,
 दीगति मैन-महीप लिखाई समीप सिखा गहि दीप-सिखा की ॥६६॥

आँखों ने निमिष, खंजन (खरँचा), मछली तथा मृगियों के नेत्रों
 को चंचलता छीन ली । देव कवि कहता है, चंद्रमा के अंक (गोदी)
 का कीचड़ (कालिमा) बेखौफ़ लेकर आँखों में काजल की रेखा
 लिखते रहे । बेडर इसलिये कहा गया है कि पंक लगने से भी कुरूप
 होने का भय न हुआ । 'लिखा की' बार-बार कर्म करने का सूचक
 वाक्यांश है । उधर कज्जल भी निच ही लगाया जाता है । हे कान्ह !
 आँखों के बिषे (आँखों में) बीसों बिस्वे बाण की तीव्रता बस गई
 है, तथा दीप-शिखा की शिखा निकट रखकर नेत्रों में राजा कामदेव
 की दीप्ति (ज्योति) लिखाई गई है ।

कोयन ज्योति चहूँ चपला सुर-चाप सुभू रुचि कज्जल कादौ,
 बुंद बड़े बरसैं अँमुवा हिरदै न बसे निरदै पति जादौ ;
 देव समीर नहीं दुनिए धुनिए सुनिए कलकंठ निनादौ❀,
 तारे खुले न घिरी बरुनी घन नैन भए दोउ सावन-भादौ॥६७॥

❀ कवि कहता है कि वर्षा का पवन संसार को नहीं धुनता
 (कँपाता या ध्वनि पूर्ण करता), वरन् सोहागने कंठ का शब्द सुन
 पड़ता है ।

नायिका के नैनों के लिये वर्षा-ऋतु का रूपक बाँधा गया है ।
 कोयन = आँखों के किनारे (कोया शब्द से बना है) । सुभू =
 सुंदर भौंहें (सुभ्रू) । कादो = कीचड़ (काँदो) जादौ = यादव ।
 तारे = नक्षत्र तथा आँखों की पुतरी । हिरदै न बसै = हृदय (पर)
 नहीं लगा हुआ है, अर्थात् वियोग की दशा है ।

कंज-सों आनन खंजन-सों दृग या मन रंजन भूलैं न वोऊ❀ ,
 तामरसौ नलिनी सरसौ अलि होइ नहीं तब सो चित सोऊ‡ ,
 पूरन इंदु मनोज सरो चित ते बिसरो उसरो उन दोऊ\$,

❀ इस मन में कमल-से मुख का तथा खरैचा-से नेत्रों का
 क्या रंजन (शोभा-वृद्धि) होता है ? क्या वे दोनों (कमल तथा
 खंजन) मुख तथा नेत्रों के आगे भूल नहीं जाते ?

‡ हे अलि (भ्रमर), यदि तुम तामरस (कमल) तथा
 नलिनी (कुमुदिनी) दोनों से सरसौ (रस मानो, प्रसन्न होओ),
 तो तुम्हारा वह चित्त भी वही न हं गा (अर्थात् जो चित्त केवल कमल
 से प्रसन्न था, वह कमल और कुमुदिनी दोनों से प्रसन्न होने से वही-
 का-वही नहीं रहेगा, प्रयुत उसकी गुणग्राहकता में क्षति पड़
 जायगी) । प्रयोजन यह है कि यदि नायक का चित्त आनन तथा
 नेत्र के बराबर कंज तथा खंजन को मानै, तो उसका चित्त वैसा
 अनवधानता-पूर्ण माना जायगा, जैसा उस भ्रमर को, जो कमल
 और कुमुदिनी से समान प्रीति करे ।

\$ पूर्ण चंद्र सरो (समाप्त हुआ, बीत गया) (और मुख
 की बराबरी न पाकर) चित्त से बिसरी तथा मनोज (कामदेव)
 (उसकी बराबरी न कर सकने से) उसरो (चित्त से हट गया)
 उ (वे) दोनों (उपमेय के योग्य) नहीं हैं ।

देवजू ओप किधौँ अपमान अरे उपमान करौ कविः कोऊ॥६८॥

ऐपन की आप इंदु कुंदन की आभा चंषा

केतकी को गाभा पीत जोतिन सों जटियत ;

जगर-मगर होत सहज जवाहिर - से ,

अति हो उज्यारे जब नैसुक ? उबटियत ।

वैसे ही सुभग सुकुमार अंग सुंदरी के

लालन तिहारे या सनेह खरे लटियत ;

देव तेबर गोरी के विलात गात बात लगे,

ज्यों-ज्यों सीरे पानी पीरे पान से पलटियत॥६९॥

(१) थोड़ा । (२) ते अब । ऐपन = चावल और हल्दी बाँटकर जो अम्लेपन बनाया जाता है । गाभा = अंतर्भाग । विलात गात = शरीर लुप्त-सा होता जाता है, अर्थात् नायिका कृश होती जाती है । लटियत = कृश होती है (लटा = दुर्बल) । उबटियत = उबटन लगाते हैं ।

✽ इन उपमानों से वर्ण्य का ओप है कि अपमान (दीप्ति देने के स्थान पर ये उपमान उपमा न माने जाने से उसका निरादर करेंगे, क्योंकि हीनोपमा का मामला हो जायगा) । इससे कोई कवि ठीक उपमान का खोज करे, अथवा कोई कवि उपमा न दे ।

† पीले पान अगर ठंडे पानी में पलटे जायँ, तो वे सड़ जाते हैं, और यदि गरम पानी में पलटे जायँ, तो ठीक रहते हैं । छंद में विरह का वर्णन है । प्रयोजन यह दिखलाया गया है कि जैसे पीले पान ठंडे पानी से सुखरने के स्थान पर बिगड़ते हैं, वैसे ही विरह के कारण नायिका उद्दीपन के उपचारों से शोभा प्राप्त करने के स्थान पर कृश होती जाती है । उपमा बहुत अच्छी है ।

करि कोरि कला उलटैं पलटैं पल ही पल ज्यों मृग बागरि के,
बहु ताको विलास बढ़े चित-बाँस पै देव सरूप उजागरि के॥
गति बंक निगंक हो नाच करैं गुर डोरि गहे गुन-आगरि के†,
तब नेह लग्यो नटनागर सों अब नैन भए नटनागरि के॥१००॥

नायिका के नेत्रों का नट से रूपक बाँधा गया है। बागरि =
जाल। गुर = वह साधन अथवा क्रिया, जिससे कोई काम तुरंत हो
जाय।

उमगत आवत सुधा-जल-जलधि पल,
घरी उघरत मुख अमिय मयूख सो ‡;
देव दुहूँ बैस मिलि रूप अधिकायो, मधु
मे † दधि दूधहि मिलायो रस ऊख सो § ।

॥ उस उजियाले रूपवाली के नेत्रों का चित्त-रूपी बाँस पर
नट की भाँति कला करने से उसका विलास बहुत बढ़ता है।

† उस गुणागरी के नैन गुर-रूपी डोरि पकड़े हुए, टेढ़ी चाल से,
निडर नाच करते हैं।

‡ एक पल भी घूँघट से मुख-चंद्र की किरण खुलते ही उसी घरी
(समय) अमृत के जल का समुद्र उमड़ता आता है। समुद्र पूरे
चंद्र के उदय होने से उमड़ता है, किंतु यहाँ सुधा-समुद्र मयूख
(किरण) से ही उमड़ पड़ता है।

§ दुहूँ बैस = बाल्यावस्था और युवावस्था, इन दोनों का
मिलान। वय-संधि। मधु तारुण्य व्यंजक है, तथा दधि-दूध बाल्या-
वस्था की शुद्धता प्रकट करते हैं। दधि-दूध में शहद तथा ऊख का-
सा रस मिला हुआ है।

छाई छबि छहरि लुनाई की लहरि लह-

रान्यो रस-मूल है रसाल सुर-रुख-सो॥;

पीवत ही जात दिन-राति तिन तोरि-तोरि,

खिन-खिन सखिन को आँखिन पिऊख-सो॥ १०१॥

नायिका की शोभा का कथन है ।

धार में धाई धर्मी निरधार है, जाय फँसीं उक्सीं न अबेरी,
री आँगराई गिरी गहिरी गहि फेरे फिरीं न धिरीं नहिं घेरी;
देव कछू अपनो बसु ना रसु लालच लाल चितै भई चेरी,
बेगि ही बूढ़ि गई पँखियाँ आँखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी॥ १०२॥

नायक के रूप से मोहित हुई नायिका का वर्णन है । धार =
यहाँ मधु-प्रवाह (प्रेम-प्रवाह) से मतलब है । निरधार = निराधार =
विना सहारे के ।

समाभेद रूपक है ।

बरुनी बघंबर औ' गूदरी पलक दोऊ.

कोये लाल बसन भगोहै भेष रखियाँ;

बूढ़ी जन ही मैं दिन-यामिनिहूँ जागी भौं हैं,

धूम सिर छायो बिरहागिनी बिलखियाँ ।

आँसू जो फटिक मान लाल डोरे सेली पैन्ह

भई हैं अकेली तजी सेली रांग मखियाँ;

॥ रस का मूल (मुख्यांश) कल्पवृक्ष-सा रसाल (रस का घर,
रस-पूर्ण) होकर लहराया (हवा के झोंकों से डालें हिलीं) ।

‡ नायक सखियों की आँखों से (श्रवण-दर्शुन द्वारा) क्षण-क्षण
तिन तोड़-तोड़कर (कुदृष्टि बराना) अमृत-सा पान करता जाता है ।

दीजिए दरस देव, लीजिए सँयोगिनि कै ,

योगिनि हूँ बैठीं यै बियोगिनि की अँखियाँ ॥१०३॥

कवि ने नायिका के विरह का रूपक योगियों की दशा से बाँधा है ।

गूदरी = पुराने वस्त्रों में चारो ओर से सीवन डालकर जो वस्त्र ओढ़ने के लायक बनाया जाता है । कथरी । कोये = आँखों के कोने ।

सेली = वह माला, जो योगी लोग धारण करते हैं ।

कुल की-सी करनी कुनीन की-सी कोमलता ,

मील की-मी संपति सुमील कुल-कामिनी ;

दान को-सो आदर उदारताई सूर की-सी ,

गुनी की लुनाई गुनमंती गजगामिनी ।

ग्रीष्म को सलिल, सिसिर को-सो घाम देव ,

हैं उँत हसंती जलदागम की दामिनी ;

पूयो को-सो चंद्रमा, प्रभात का-सो सूरज ,

सरद को-सो वासरु, वसंत की-सी जामिनी ॥१०४॥

इस छंद में उपमाओं की अच्छी बहार है ।

(१४)

शाब्दिक सामंजस्य

कानान कोननि कूँद फिर करि सौतिन के उरखेत की खूँदनि ,

देवजू दौरि मिले ठगि ज्यौँ मृग जे न फँदे फँदवार* के फूँदनिx;

* बहेलिया, फंदा लगानेवाला ।

x फंदों से । जो मृग बहेलिए के फंदों से नहीं फँसे थे, वे भी ठगे-से दौड़कर लटों से मिल गए । प्रयोजन यह कि लटों की सुंदरता से अरसज्ञ भी मोहित हो गए ।

घूँ घट के घटकी नटकी ❀ सुछुटी लटकी लटकी गुन गूँदनि ,
 केहू कहूँ न छुरै बिछुरै ‡ बिचरै न चुरे § निचुरै जलबूँदनि ॥ १-५॥

लट का वर्णन है ।

खूँदनि = कुचलना । घटकी = बीच में रहनेवाली । लटकी =
 लटकती हुई । गूँदनि = गुथी, गुड़ी, गाँठ ।

दूलहै सोहाग दिन तू न है तिहारे, तिन
 तूलहै, तिहारे सो अयान ही की भूल है ;
 भूल है न भाग की, प्रवाह सो दुकूल है ,
 दुकूल है उज्यारो, देव प्यारो अनुकूल है ।
 कूल है नदी को, प्रतिकूल है गुमान री ,
 अहू लहै सु तीन जौन जोवन अहूल है ;
 हूल है दिये में, पलहू लहै न चैन री ,
 निहारु पल दूलहै, बिहारु पल दूलहै ॥ १०६ ॥

तिहारे दूलह को (तेरा) सोहाग दिन के तुल्या (समुज्ज्वल) है,
 तिनको तू लह (प्राप्त कर), तेरे में अनजानपने ही की भूल है,
 भाग्य की भूल नहीं है । प्रवाह से ही दुकूल (दो किनारेवाली नदी
 होती) है (अर्थात् जब प्रेम प्रस्तुत है, तब किन्हीं बातों की शंका

❀ नहीं रुकी ।

† न छुटती है ।

‡ न हटती है ।

§ नहीं छिपती है ।

करके उसका अभाव मानना अनुचित है), तेरा प्रिय पति अनुकूल (केवल तुझमें अनुरक्त) है, (जिससे) तेरे दोनो कुल उजियाले हैं । गर्व अनुचित है, जो अहूल यौवन (अर्नेद्य बढ़ती जवानी) नदी को कूज है, सो अहू (अब भी) लहै (प्राप्त कर) । (प्रयोजन यह है कि अर्नेदित यौवन नदी का किनारा है, अर्थात् स्थिर नहीं रहता है । उसे प्राप्त कर, अर्थात् उपसे आनंद ले ।) (तेरे दूल्ह के) हृदय में (तेरी रुवाई से) हूल (दर्द) है, उसे एक पल भी चैन नहीं मिलती, एक पल-भर दूल्ह को देख, दो पल-भर विहार प्राप्त कर । उत्तमा मखी को मानवती नायिका को शिक्षा है ।

आई बरसाने ते बुलाई वृषभानु-सुता,
निरखि प्रभान प्रभा भानु की अथै गई ;
चक-चकवान को चुकाए चक चोटन सों,
चकित चकोर चकचौंधी-सों चकै गई ।

नंदजू के नंदजू के नैनन अनंदमयी,
नंदजू के मंदिरन चंदमयी छै गई ;
कंजन कलिनमयी, कुंजन अलिनमयी

गोकुल को गलिन नलिनमयी कै गई ॥ १०७ ॥

बरसाने = राधिका की जन्मभूमि का गाँव । अथै गई = अस्त हो गई । चुकाए = भुला दिए । चक-चकवान = चक्रवाकी और चक्रवाक (चकई और चकवा) । चक-चोटन = नैन-सैन (चक = चबु) । चकै गई = छका गई, चकित कर गई । नंदजू के नंदजू = (नंद-पुत्र) कृष्णजी । छै गई = पूरित हो गई, छा गई । नलिनमयी कै गई = कमलमयी रास्ता बना गई । यथा तुलसीदासजी ने

कहा है — “जहाँ बिलोकि मृग-शावक-नैनी, जनु तहाँ बरसि कमल-सित-श्रैनी ।”

यह भी कहा जा सकता है कि रास्तों में कमलमुखी सखियाँ भर गईं, जिससे मानो रास्ते ही कमलमय हो गए ।

अंत रुकै नहि अंतरु कै मिलि अंतरु कै सु निरंतरु धारै❀,
ऊपर बाहि न ऊपर वा हित ऊपर बाहेर की गति चारै‡ ;
बातन हारति बात न हारति हारति जीभ न बातन हारै§ ,
देव रँगो सुगत्या सुरत्यो मनु देवर की सुगत्यो न बिमारै॥१०८॥
परकीया नायिका है । उपपति से प्रेमाधिक्य का वर्णन है ।

❀ (उपपति से) अंतर करके वह अलग नहीं रुकती है, और मिलकर जब अंतर करती है (जैसा कि उपपति से प्रेम करने में स्वाभाविक है, क्योंकि उपपति से मिलन थोड़ी देर ही को मौका निकालकर होता है), तब (स्मरण में) उसे निरंतर धारण करती है ।

‡ ऊपर (दिखलाने में) बाहि (उपपति को) नहीं (चाहती), वरन् ऊपर वा (पति) से हित है, और युक्ति-पूर्वक ऊपर बाहरवाली गति में ही चलती है (दिखलाने को पति से ही प्रेम करती है) ।

§ उस (उपपति की) ओर हारती है (मन विवश होकर भी उसकी ओर जाता है), किन्तु बातों में उससे हारती नहीं है । (बातों में प्रेम प्रकट नहीं करती है, अर्थात् विवश होकर कर्मों से तो उससे प्रेम प्रकट करना ही पड़ता है, किन्तु बातों में नहीं करती है ।) बातें करते-करते जिह्वा थक जाती है, किन्तु बातें नहीं चुकती ।

॥ देव कहता है कि वह देवर की सूरत और सुरति दोनों में रंजित है, तथा उसका स्मरण भी मन से नहीं भुलाती ।

अंबकुल बकुल* कदव मल्ली मालती
 मलैजना को मीजिकै गुनावन की गली हैं ;
 को गनै अलप तरु† जी सों, जो कलपतरु
 तामों बिकलप क्यों अलप मतिअली हैं ।
 चित जाके चाय चढ़ि चंरु चपायो कान,
 मोचि सुख सोच हैं सकुचि चुप चनी हैं ;
 कंचन बिचारे रुचि पंचन में पाई देव
 चंपावरनी के गरे परयो चंपकली हैं ॥१०६॥

बिकलप = विकल्प = विह्वल, उद्विग्न, व्याकुल, संशय-युक्त ।
 सखी का कथन है कि हे भ्रमर ! तू अल्पमति होकर ऐसी पारि-

* मौलसिरी, केंसर ।

† मलयज, चंदन ।

‡ छोटा दरख्त या खराब दरख्त । उन छोटे पुष्प वृक्षों को कौन गिन सकता है, जिनसे तू (अलि) अनुकूल है ।

§ जिसके चित्त ने उत्साह धारण करके चंपे के फूल को कोने में चपा दिया (कांति-हीन कर दिया, अर्थात् उसके रंग के आगे चंपे का रंग फीका पड़ गया), किंतु जो चंपे को कांति-हीन करने के कारण शोक एवं संकोच-पूर्ण होकर, सुख छोड़ चुपके-से चल दी । प्रयोजन यह है कि अपनी कांति से चंपे को युति-हीन करने से उसे गर्व अथवा प्रसन्नता न हुई, वरन् उलटे खेद हुआ । नायिका को चंपे की पराजय से दुःख हुआ है ।

॥ उस चंपकवर्णशाली नायिका के गले में चंपकली के रूप में पड़ने से सोने की चाह पंचों में हुई ।

जात (रूपी सुंदरी) से क्यों विमुख होता है, जब तूने उससे हीन-
तर अंबकुल, बकुल आदि को पसंद किया ही है ?

(१३)

संक्षिप्त गुण

कीच के बीच रटें चुगियाँ कुल-सी उमड़ी तुलसी बन लूनी ,
देव सिद्धी जमुना सिद्धियै चढ़ि दीन्हो मनोरथ को हम चूनी ;
बीच खगै खग कंटक है सुनौ कंटक ई रहि आवत ऊनी ,
पापन चाव बितै चिन की गति देहहु के दुख में सुख दूनी॥११०॥
इस छंद के विषय में देवजी ने स्वयं यह दोहा लिखा है—

सकल लच्छना-भेद बर और व्यंजना-भेद ,
तात्पर्य प्रगटत तहाँ दुख के सुख सुख खेद ।

इस छंद को देव ने लच्छना-व्यंजना के सकल भेदों के संकर उदा-
हरण में दिया है । इसका शब्दार्थ लेने से अर्थ न बनेगा, क्योंकि
स्वयं कवि ने इसे आध्यात्मिक अर्थ में लिखा है ।

संसार मानो कीच है (क्योंकि उसमें बुराई बहुत है), जिसमें
दुर्वासनाएँ (चूड़ी से दुर्वासनाएँ व्यंजित की गई हैं) प्रबला
(रहती) हैं, तथा कुल के समान उमड़ी हुई तुलसी (सुवासनाओं)
का गहन वन कटा पड़ा है । देव कवि कहता है कि यमुना जो स्वर्ग
की सीढ़ी है, उस पर (घाट की) सीढ़ियों से चढ़कर मैंने मनोरथों
को चूना दे दिया (चुनौती दी, ललकार दिया) । इतना करने पर भी
बीच में खग (जीवात्मा) कंटक होकर खगता (चुभता) है, और वह
कंटक ही कम क्रिया नहीं होता (सांसारिक बखेड़े छोड़े नहीं छूटते) ।
जब चित्त की गति पर ध्यान देता हूँ, तब उसमें पापों का चप पाता
हूँ, किंतु जब तपादि दैहिक कष्टों पर विचार करता हूँ, तब अंत

में उस दुःख में दूना सुख देख पड़ता है, क्योंकि उनसे मुक्ति प्राप्त होती है, जो वास्तविक सुख है। खग के उपर्युक्त अर्थ में जीवात्मा शुद्ध निर्विकार आत्मा के लिये कंठक माना गया है। यह भी कहा जा सकता है कि बीच में खग के साथ खग कंठक है, अर्थात् परमात्मा के साथ जीवात्मा कंठक-रूपी है। यथा “द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयारन्यः पिन्यतं स्वाद्वयनशनन्नन्यो अभिचाकरोति” (मुंडकूपनिषद्)। दो पक्षी संयोगी मित्र एक वृक्ष पर स्थित हैं। उनमें एक पीपल को स्वाद से खाता है, न खाता हुआ दूसरा प्रकाशमान है। यहाँ खानेवाला पक्षी जीवात्मा है, और न खानेवाला परमात्मा। इसी भाव को कवि ने तीसरे चरण में कुछ-कुछ व्यंजित किया है। इस छंद में लक्षणा और व्यंजना के सब उदाहरण निकलते हैं। यह देव की रचना में मंजिप्त गुण का अच्छा उदाहरण है।

‘तुलसी बन लूतो’ में उपादान लक्षणा है, क्योंकि वन आप-से-आप नहीं कटा है, वरन् उसे किसी ने काटा है। ‘रटैं चुरियाँ’ में लक्षणा लक्षणा है, क्योंकि चुरियाँ नहीं रटतीं, वरन् उनके हिलने से शब्द सुन पड़ता है। ‘यमुना जिड़ियै चढ़ि’ में शुद्ध सारोपा लक्षणा है, क्योंकि समता के कारण यमुनाजी सीढ़ी कही गई हैं। कीच को संसार कहना शुद्ध साध्यवसान लक्षणा है, क्योंकि समता के कारण संसार का नाम न लिया जाकर वह कीच ही कहा गया है। ‘खग कंठक हूँ खगै’ में गुण देखकर खग कंठक कहा गया है, सो गौणी सारोपा लक्षणा है। गुणों के कारण दुर्वासना को चूड़ी और सुवासना को तुलसी कहना गौणी साध्यवसान के उदाहरण हैं; मतोरथ को चूना (चुनौती) देना रूढ़ि लक्षणा का उदाहरण है, और ऊपर जो अन्य छंद भेद दिखलाए गए हैं, वे प्रयोजनवती के हैं। देव ने गौणी लक्षणा को मौलिक कहा है।

कीच के बीच चुरियों के रटने से संसार में दुर्वासनाओं का बत जो दिखलाया गया है, वह अगूढ़ व्यंजना का उदाहरण है। देहहू के दुख में सुख दूनों' यह वाक्य गूढ़ व्यंजना का उदाहरण है। पूरे छंद में आध्यात्मिक भावों का प्रकटीकरण व्यंग्य द्वारा हुआ है। तात्पर्य यह कि सांसारिक सुख में वास्तविक दुःख तथा सांसारिक दुःख में वास्तविक सुख है।

अन्य मूल-मंत्र

“समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽजीशया शोचति मुह्यमानः ;
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्यमहिमानमिति वीतशोकः ।
यदा पश्यः पश्यते स्वमवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्,
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूव निरंजनः परमं साम्यमुपैति ।”

(मुण्डकोपनिषत्)

निरंजन=निर्विकार ।

पीतम बेप बिलास बिसेख सविभ्रम भौहन जोहनि जोऊ,
रूप के भार धरे लघु भूषन औ' विपरीति हँसै किन कोऊ;
भै रसरास हँसी रिस हू रस देवजू दूख मुखै सम होऊ
तोहि भटू बनि आवत है रस भाव सुभाव मैं हाव दसोऊ । १११॥

इस छंद में दसों हावों के उदाहरण दिए गए हैं। संक्षिप्त गुण की यहाँ प्रधानता है।

“होहि संयोग सिंगार में दंपति के तन आय—

चेष्टा जे बहुभाँति की ते कहिए दस हाव ।”

(१) लीला-हाव पति के भूषण, वसनादि पत्नी द्वारा धारण करने से होता है। इस छंद में भी नायिका द्वारा पति का वेश धारण करने में लीला-हाव आया। (२) विलास-हाव गमनादि

में कुछ विशेषता से होता है। विशेष विलास में विलास हाव मिला। (३) लघुभूषण से विक्षिप्त-हाव हुआ। (४) विपरीत भूषण से विभ्रम-हाव आया। (५) 'भै रसरास हँसी रिस हू रस' में कई भाव मिलने से कित्तकंचित-हाव प्राप्त हुआ। (६) सुख का दुःख के समान मानने में कुटमित-हाव प्रकट है। (७) भौंहों द्वारा देखने में भविष्य में भी दरस-कामना प्रबला होने के कारण मोटायत-हाव हुआ। (८) रिस से पति का आराध व्यंजित है, जिससे विव्वाक-हाव आया। (९) रूप का भार नायिका पर है, अर्थात् रूप ही उसका पूर्ण आभरण है, जिससे आभरण-बाहुन्य का विचार आने से ललित-हाव निकला। (१०) 'भै रसरास' में रास के रस में भय लगा रहने के कारण उसमें अमूर्णता का अभिप्राय व्यंजित हुआ, जिससे विहित-हाव आया।

छंद का अर्थ सुगम है। तृतीय चरण में भय इस कारण है कि कोई विहार-क्रीड़ा देख न ले। रस, रास और हँसी विलास-क्रीड़ा में स्वाभाविक हैं। रिस मान के कारण हुई, और उसके पीछे मान-मोचन से फिर से रस हो गया। नायिका विलास-क्रीड़ा में इतनी प्रसन्न है कि उसके लिये तत्संबंधी दुःख और सुख प्रायः सम हो रहे हैं। दुःख का आभास प्रकट में 'नाहीं' आदि कहने से होता है, और सुख प्रकट विलास-कामना से।

चतुर्थ चरण में 'भटू'-शब्द 'बधू' का अन्य रूप है, और स्त्री के लिये एक आदर-सूचक संबोधन है।

बेरागिनि कीझौ अनुरागिनि सोडागिनि तू

देव बड़भागिनि लजाति औ' लति क्यों ;

सोवति जगति अरसाति हखाति अन-

खाति बिज्जखाति दुख मानति डरति क्यों ।

चौकति चरति उवठति औ' बरति बिथ-

कति औ' थरति ध्यान धीरज धरति क्यों ;

मोहति मुरति सतगति इतराति साह-

चरज सराहि आहचरज मरति क्यों ॥ ११२ ॥

हरखाति = हर्षित होती है । अनखाति = क्रोध करती है । यह 'अनखाना'-शब्द से बना है । सतराति = अप्रसन्न होती है ।

इस कवित्त में तैंतीस संचारी भावों के उदाहरण सूक्ष्म रूप से दिए गए हैं । इसकी टीका स्वयं देवजी ने 'शब्द-रसायन' में यों लिखी है—

बैरागिनि निर्वेद उग्रता है अनुरागिनि ;

गर्व सोहागिनि जानि भाग मदते बड़भागिनि ।

लज्जा लजति अमर्ष लरति सोवति सुनीद लहि ;

बोध जगति आलस्य अलस हर्षति सुहर्ष गहि ।

अनखाब असूया ग्लानि श्रम बिलख दुखित दुख दीनता ;

संका डराति चौकति असति चकित अपस्मृत लीनता ॥ १ ॥

उचकि चपल आवेग व्याधि सों बिथकि सुब्रीडति ;

जड़ता थकित सु ध्यान चित्त सुमिरन धरि धीरति ।

मोह मोहि अविहिथ मुरति सतरानि उग्रगति ;

इतरै बो उन्माद साहचर्यै सराह मति ।

अह आहचर्य बहुतर्क करि मरन संझ गूरछि परति ;

कहि देव देव तैंतीस हू संचारिन तिय संचरति ॥ २ ॥

बिमल है मलिन ससंक बंक सलज
 सिथिल दीन सालस सवित सँभरति है ;
 मद उनमाद धीर चपल अमर्ख हर्ख ,
 नींद जाग्र स्वपन बितक बिसुरति है ।
 व्याधि गर्ब उग्र उतकंठा दुख आवेग,
 अचल बच खोट सबै जानति डरति है ;
 मोहति मुरति आँसू स्वेद थंभ पुलक,
 बिबर्न स्वरभंग कपि मूरछि परति है ॥ ११३ ॥

इस छंद में विविध भावों का फल शरीर पर कथित होकर
 संचारी भावों की मुख्यता है । वियोग शृंगार का कथन है ।
 सालस = आलस्य-सहित । अमर्ख (अमरख; अमर्ष) = क्रोध ।
 बितर्क = विचार । बच खोट = बुरे वचन । बिबर्न = रूपांतर ।

नीचे को निहागत नगीचे नेन अधर
 दुबीचे दन्यो स्यामा अरुनाभा अटकन को ;
 नील मनि भाग ह्वे पदुमराग है कै
 पुखराग है रहत बिध्यो छ्वै निकट कन को ।
 देवजू हँसत दुति दंतन मुकुत जोति ,
 बिमल मुकत हीरा लाल गटकन को ;
 थिरकि-थिरकि थिरु थाने पर तान तोरि,
 बाने बदलत नट मोती लटकन को ॥ ११४ ॥

लटकन के मोती का वर्णन है । इस छंद में मीलित अलंकार
 की बहार है । अरुनाभा (अरुण + आभा) = लाल छटा; लटकन

में यह लाल रंग अधरों से प्राप्त है । स्यामा = काला रंग; यह रंग
 आँखों की पुतलियों से आया है । पदुमराग = मानिक या लाल-
 नामक रत्न । पुष्पराग (पुष्पराग = एक प्रकार का रत्न जो प्रायः
 पीला होता है । लटकन के मोती में यह पीलापन कंचन-तन या
 स्वर्ण से प्राप्त है । कन = सोने का कण । बाने = वेश (भेष) ।
 बानर बोर बसाए॥ अटा रँग† मंदिर में सुक साग्यो चिरैया,
 भोग लौं ऊखिल भीर अथाय‡ द्वार न कोऊ किवार भिरैया ;
 कौलौ घिरे घर मैं रहौं देव\$ बछा बिछुरे कही कौन घिरैया×,
 फूले न बाग+ समूले न मूते ऊसूले ÷ खरे उर फूले फिरैया = ।
 इस छंद में संक्षिप्त गुण का कवि ने अच्छा समावेश किया है ।

(१७)

रूप तथा नख-शिख

माथे मनोहर मौर लसै, पहिरे हिय मैं गहिरे गुँजहारनि ,
 कुं डल मंडित गोल कपोत, सुधा-सम बोल बिलोल निहारनि ;

॥ भूत गुप्ता ।

† लक्षिता ।

‡ मुदिता अथवा स्वयंदूती ।

\$ कुलटा ।

× भविष्य गुप्ता

+ प्रथम अनुसेना ।

÷ वचनविदग्धा ।

= दूसरी अनुसेना ।

सोहति त्यों कटि पीत पटी, मन मोहति मंद महा पग धारनि,
सुंदर नंदकुमार के ऊपर वारिण कोटिकु मार-कुमारनि॥११६॥

श्रीकृष्ण के कुमार-स्वरूप का वर्णन है । बिलोल = चंचल । मार-
कुमारनि = कामदेव के लड़कों को ।

आओ ओट रावटी भगोखा भाँकि देखौ देव,
देखिबे को दाँउ फेरि दूज दौस नाहिनै ;
लहलहे अंग रंगमहल के अंगन में
ठाढ़ी वह बाल लाल पग न उपाहिनै* ।
लोने सुख लचनि, नचनि नैन-कोरनि की
उरति न और ठौर सुगति सराहिनै† ;
बाम कर बार हार अंचल सम्हारै, बरै
कैश छंद कंदुक चछारै कर दाहिनै ॥ ११७ ॥

दूती नायक को नायिका का दर्शन कराती है । नायिका के उत्तम
चित्र का वर्णन है ।

रावटी = तंबू, क़नात । दाँउ = मौक़ा (दाँव) । छंद = खेल,
छरछन्द ।

* पैर में जूता नहीं है (उपाहन = जूता) ।

† सुरति की सराहना दूसरे ठौर नहीं उरती (औरती, ध्यान
में आती) ।

पूरन प्रेम सुधा बसुधा बसुधारमई बसुधार सु रेखी॥
जीवन या ब्रज जीवन की ब्रज जीवन जीवनमूरि बिसेखी† ;
तू परमावधि रूख रमा परमानंद को परमानंद पेखी‡ ,
नेह-भरी नख ते सिख देव सुदेह धरे सखि-मूरति देखी॥११८॥

रेखी = रेखा खींची हुई, गिनी हुई, गण्य । बसुधा = पृथ्वी ।
जीवन = पानी (जीवनं भुवनं जलमित्यमरः) ।

सरद के बारिद मैं इंदु सो लसत देव
सुंदर बदन चाँदनी सो चारु चीर है ;
सोधो सुधा-बिंदु मकरंद - सी मुकुत-माल
लपिटी मनोज§ तरु - मंजरी सरीर है ।
सील-भरी सलज सगोनी मृदु मुसुकानि
राजै राजहंसगति गुनन गहीर है ;

⊗ वसु (ज्योति की) धारा-युक्त रत्नों की धार सुंदर प्रकार
से गण्य हुई । प्रयोजन यह है कि नायिका ज्योति-पूर्ण रत्न-समूह-
सी है ।

† तू ब्रज के जीवधारियों की जीव है, अथच जल-रूपी ब्रज
की जीवनमूरि (जीवन की उत्पत्ति का हेतु) विशेष रूप से है ।

‡ तू लक्ष्मी के सौंदर्य की अत पर सीमा है, अथच परमानंद को
भी प्रमाण देने (हृद बाँधने)-वाली तुझे हमने देखा ।

§ चित्त प्रसन्न करनेवाली ।

घेरी चहूँ ओरन ते भौरन की भीग, तामें
ये री चितचोरनि चकोरनि की भीर है॥११६॥

सोधो = शुद्ध । गहीर = गंभीर ।

कातिक† की राति पूनो इंदु परकास दूनो
आस-पाम‡ पावस - अमावस खगो रहै ;

ग्रीष्म§ की उषमा मयूष मान कसे, मुख+
देखे सनमुख निसि सिसिर लगी रहै ।

बरसै× जोन्हाई सधा बसुधा सहस हंधार
कुमुदिनि सूखै ज्यों-ज्यों जामिनि जगी रहै ;

दोऊ÷ पर उज्जल बिराजै हंस हंभी देव
स्याम रंग रंगी जगमगि रमगी रहै ॥ १२० ॥

॥ प्रयोजन यह है कि सौरभ के लोभ से भौर तया चंद्रमा के भ्रम से चकोर नायिका को घेर रहे हैं ।

† शरद् ।

‡ मुख-मंडल के इधर-उधर बालों के समूह से मेघाच्छादित वर्षा-ऋतु का मतलब है ।

§ नायिका के मान करने मे ग्रीष्म-ऋतु का अभिप्राय है ।

+ नायिका के मुदित मुख-चंद्र से शिशिर का अभिप्राय है ।

× हेमन्त-ऋतु ; इस ऋतु में कुमुदिनी ज्यों-ज्यों रात्रि बढ़ती है, त्यों-त्यों सूखती है ।

÷ वसन्त-ऋतु ; इस ऋतु में दोनो पक्षों में आनंद रहता है ।
इसी-रूपी नायिका के दोनो पर श्याम (हंस, नायक) के रंग में रंगे होने पर भी उज्ज्वल हैं ।

रूप में षड् ऋतु ।

खगी रहै = गड़ी रहै । उषमा = गरमी । मयूष = किरणें ।
मान कसे = मान-युक्त होने से । जामिनि जगी रहै = रात्रि जगती है,
अर्थात् बढ़ती है । उमगी रहै = उल्लसित बनी रहे । कुमुदिनी =
(कुमुद), गदूल, कोकाबेली ; पद्मिनी (नायिका) । पर = पद्म ।

नायिका के स्वरूप एवं भावों की ऋतुओं से समानता दी गई है ।
आई हुती अन्हवावन नायनि सोधो लिए कर सूधे सुभायनि,
कंवुकी छोरी उतै उबटैवे को ईगुर-से अँग की सुखदायनि ;
देव सरूप की रासि निहारति पायँ ते सीस लौं सीम ते पायनि,
है रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी-सो, हँसै कर ठोढ़ी धरेठ कुरायनि ॥१२१॥

सोधो = सुगंधित द्रव्य (शोधन-शब्द से निकला है, जिसका
अर्थ स्वच्छ करना है) । उबटैवे को = उबटन करने को ।

घाँघरो घनेरो लाँबी लटै लटे लाँक पर,

काँकरेजी सारी खुली अधखुनी टाड़ वह ;

गोरी गज-गौनी दिन दूनी दुति होनी देव,

लागति सलोनी गुरु लोगन के लाड़ वह ।

चंचल चितौनि चित चुभी चितचोरवारी,

मोरवारी बेसरि ओ' केसरि की आड़ वह ;

हँसि-हँसि बोलन की गोरे-गोरे गोलन को,

कोमल कपोलन की जी मैं गड़ी गाड़ वह ॥१२२॥

लटे = चीण, पतले । लाँक = कटि (लंक) । टाड़ = टड़िया ;
भुजाओं पर पहनने का भूषण । मोरवारी बेसरि = मोर (आभूषण)
युक्त नथ । मोर एक गहना है, जो मयूर की आकृति का सोने में
मोती पिरोकर बनता है ।

घेरदार घाँघरा है तथा क्षीण कटि तक लंबी लट्टें लटकी हुई हैं ।
काँकरेजी (पतले कपड़े तथा काले रंग की) सारी से ढँकिया
कुछ खुली तथा कुछ अधखुली हैं ।

जगमगी ज्योतिन जड़ाऊ मनि-मोतिन की
चंद-मुख-मंडल पै मंडित किनारी-सी ;
बेंदी बर बीरन गहीर नग हीरन की
देव कमकनि में कमक भीर भारी-सी॥

अंग-अंग उमड़-यो परत रूप रंग नव-
जोवन-अनूपम उज्यास न उज्यारी-सी+ ;
डगर-डगर बगरावति अगर अंग,

जगरमगर आपु आवाति दिवारी-सीx ॥ १२३ ॥

गहीर = गंभीर, भारी । नग = रत्न । कमकनि = प्रकाश । उज्या-
सन = प्रकाश-समूह । अगर = आगे ।

गोरे मुख गोल हरे हँसत कपाल बड़े
लोयन बिलोल बोल लोने लीन लाज पर ;
लोभा लागे लाल लखिबे को कबि देव छवि
गोभा-से उठत रूप सोभा के समाज पर ।

⊗ बेंदा, अच्छे पानों तथा भारी हीरा के नगों के प्रकाशों में
ज्योति की बड़ी भीड़-सी लगी है ।

+ नए, यौवन का ऐसा उजियाला है, मानो चाँदनी रही
न गई ।

x रास्ते-रास्ते में अंग की जगमगाहट आगे ही फैलाती हुई
स्वयं वह दीवाली-सी (चमकती हुई) चली आती है ।

बादले की सारी दरदावन किनारी जग-

मगी जरतारी भीने झालरि के साज पर ;

मोती गुहे कोरन चमक चहुँ ओरन ज्यों

तोरन तरैयन को तानी द्विजराज पर ॥ १२४ ॥

हरे = धीरे-धीरे । बिलोल = चंचल । गोभा (कोभा) = कल्ला ।

बादले (बादला) = एक प्रकार का कपड़ा, जो तार व रेशम से बनता है । दरदावन (दरदामन) सब छोरे । तोरन (तोरण) = बंदनवार ।

सोधि सुधारि सुधाधरि देव रची नख ते सिख सुद्ध ससी-सी,

सोने-से रंग, सलोने-से अंगन कोने न नैन कसौटी कसी-सी ;

ही के बुझै सबही के सताप सु सौतिन* को असराप अमीसी ,

भावती हौ हित ही कि हितू भई आवती हौ, अखियानि, बसी-सी ।

असराप = विना शाप । सराप = आप=शाप । असीसी =

आशीर्वाद दिया ।

लागत समीर लंक लहकै समूल अंग

फूल-से दुकूलन सुगंध बिथुरो परै ;

इंदु - सो बदन मंद हाँसी सुधा-बिंदु

अरबिंदु ज्यों मुदित मकरंदन मुगे परै ।

ललित लिलार अम झलक अलक भार

मग में धरत पग जावक घुगे परै ;

देव मनि नूपुर-पदुम पद दू पर है ,

भू पर अनूप रूप रंग निचुगे परै ॥ १२५ ॥

* सौतेले को आशीर्वाद देती है ।

लंक = कटि । श्रम झलक = परिश्रम की झलक अर्थात् स्वेद-बिंदु ।
पदुम-पद दू पर = दानो चरणार्विंदों पर ।

अंबर नील मिली कवरी मुकुता-लर दामिनी-सी दसहूँ दिसि,
ता मधि माथे में हीरा गुह्यो सुगयो गड़ि कसन को छबिसोंलिसि
माँग के मूल बनो सिरफूत दह्यो भ्रमकै रुन कावलि सों घिसि ,
शृंगसुमेरु मिले रवि चंद ज्यों पावस मास अमावस कोनिसि ।

कवरी = लट । लिसि = मिल करके । शृंग सुमेरु-पर्वत की
चोटी पर । अंबर नील-नीला कपड़ा, जो बेनी में लगा हुआ है ।
आकाश का प्रयोजन नहीं है, क्योंकि मुक्ता-लर की दामिनि से जो
उपमा है, वह इस कारण से केवल एकदेशीय मानी जायगी कि
आगे के पदों में केश-पाश का आकाश से रूपक चला नहीं है ।

काम-गिरिकुंड ते उठति धूम-सिखा कै
चटक-चरनाली सारदा में पीत पंकज की ;
तनक-तनक अंक-पाँति ज्यों कनक-पत्र,
बाँचत ससंक लंक लीनी रीति रंक की ।
सूक्ष्म उदर में उदार निरै नाभी कूर
निकसति ताते ततो पातक अतंक की ;
रंचक चितौत बित-बंचक चढ़ावै दोष, रोम-
रेखा चौधिरसोम-रेखा ज्यों कलंक की ॥ १२७ ॥

कामगिरि-कुंड = कुचों के बीच का नीचा स्थान । यह रोमा-
वली काम-गिरि-कुंड से उठती हुई धूम-शिखा है, या पीत-पंक-युक्त
सरस्वती-नदी में चटक-पक्षी की चरणावली (चरण-चिह्न की पंक्ति) ।

नायिका की रोमावली का वर्णन है। चटक = एक पक्षी जिसको गौरैया कहते हैं। चरनाली = चरणों की पंक्ति। सारदा = सरस्वती। लंक = कटि। लंक लीनी रीति रंक की = कटि-प्रदेश रंक की दशा को प्राप्त हुआ; अर्थात् (कटि) क्षीण हो गई। उदार = इस वास्ते उदार है कि पापों को बाहर निकाले देता है। निरै = नरक। ततो पातक अतंक = पातकों के प्रताप का विस्तार। यहाँ कवि ने रोमराजी की श्याम रंग के कारण पाप से समता दी है। रंचक = थोड़ा। चित-बंचक = चित्त को ठगनेवाली। चित्त वृत्ति उसे देखकर बिगड़ती, सो मानो वह सदोष हो जाती है।

उज्जल कंगोल अरुनाधर मधुर बोल,

लोल चकचौंध सो अमंद मंद हास को;

चंकेने चिवुछ चारु नायिका मुकुट भार,

ललित लिलार बेंदी बंदन बिनास को*।

कंचन किनागी भुमकारी मै करन-फूल,

सीम-फूल हीरा लाल मोतिन उजास को;

देव ज्यों उदित हं दु-मंडल अखंड मुख-

मंडल के आस-पास मंडल प्रकास को ॥ १२८ ॥

नायिका के मुख-मंडल का वर्णन। अरुनाधर = लाल ओंठ। लोल = चंचल। उजास = प्रकाश। मै = (मय); सहित। भुमकारी मै करन-फूल = भुमकारी (गुच्छा)-सहित कान में पहनने का गहना।

जिंदी और हंगुल उसमें विलास करते हैं, अर्थात् खेल-सा करके प्रभा फैलाते हैं।

आँड़ी चितौनि कहूँ उड़ि लागती बंदन आड़े जो आड़ न होती॥
 डारतो गूँदि गुमान गयंदु जो गोल कपोलनि गाड़ न होती† ;
 लूटती लोकुलटैं सफुलेल हमेल हिए भुज टाड़ न होती‡ ,
 चंदु अचानक चवै परतो मुख-चंदु पै जो चित चाड़ न होती§ ।

आँड़ी = टेढ़ी । गाड़ = गड़नि, नम्रता । लटैं सफुलेल = फुलेल-
 सहित वेणी (केश-कलाप) । हमेल = हृदय पर पहनने का एक भूषण ।
 टाड़ = हाथ पर पहनने का एक भूषण, टँडिया । चाड़ (चाँड़) =
 भारी चाह ।

ईगुर-सो रँग एँड़िन बीच, भरीं अँगुरी अति कोमलतायनि ,
 चंदन-बिंदु मनौ दमकै नख देव चुनी चमकै ज्यों गुभायनि×;
 बंदत नंदकुमार तिहारेई राधे बधू ब्रज की ठकुरायनि ,
 नूपुर-संजुत मंजु मनोहर जावकरंजित कंज-से पायनि ॥१३०॥

⌘ यदि ईगुर की आड़ (बुंदी) आड़े न आती (रक्षिका
 न होती), तो कहीं नायिका के (किसी की) टेढ़ी डीठि (नज़र)
 उड़कर लग जाती ।

† गुमान-रूपी हाथी गालों के गड्ढे में गिर पड़ने से किसी को
 मर्दित नहीं कर सकता ।

‡ यदि टँडिया से भुज व हमेल से हृदय एक प्रकार बद्ध-से
 न होते, तो फुलेल लगी हुई लटें सारी दुनिया लूट लेतीं । प्रयोजन यह
 समझ पड़ता है कि टँडिया तथा हमेल भी ऐसी अच्छी हैं कि केवल
 लटें संसार का ध्यान अपनी ओर नहीं खींच पातीं । भाव यह बैठता
 है कि लटें, टाड़ और हमेल, सभी बहुत सौंदर्य-विवर्द्धक हैं ।

§ मुखचंद तो अच्छा है ही, किंतु चित्त की चाड़ उससे
 भी अच्छी है, जिससे केवल मुख पर ध्यान नहीं जमता ।

× नखों की उपमा चंदन-बिंदु तथा चुन्नी, दोनों से दी गई है ।

केवल राधिकाजी के चरणों का वर्णन एवं उन चरणों की वंदना
कृष्णचंद्रजी से कराई जा रही है। चुनी = माणिक्य के छोटे टुकड़े।
जावक = महावर। रंजित = रंगे हुए। मंजु = सुंदर।

देव सुवरन गुन बीध्यो है मधुर महा,

अधर सधर के अखारे सुख ढार मैं * ;

थिरकत थान तान तोरत तरथोनन सों,

बोलन कपोलन के बिनल बिहार मैं† ।

मनोरथ चह्यो मनमथ के अथक पथ ,

नथ को पे न थको निरत निराधार मैं‡ ;

मोती लटकन को नवल नट नाचत,

नयन निरतत हैं चटुन चटसार मैं॥१३१॥

* देव कहता है कि लटकन सोने के तार से गूथा है, तथा
सुख में ढले हुए महामधुर अधर सधर (नोचे के तथा ऊपर के ओंठ)
के अखाड़े में (नाचता) है।

† नायिका के बोलने में जब विमल कपोल (गाल)
विहार करते (हिलते-डोलते) हैं, तब लटकन अपने स्थान पर ताल
देकर नाचता तथा कर्णफूलों से तान तोड़ता है, अर्थात् कर्णफूल
और लटकन दोनों बोलने में साथ-ही-साथ ऐसे हिलते हैं, मानो
एक दूसरे से तान तोड़ते हैं।

‡ लटकन मनोरथ (वांछा) है, जो कामदेव के अथक
(न थकनेवाले) मार्ग पर चढ़ा हुआ है। वह यद्यपि नथ (बेसरि)
का अंग है, तथापि निराधारता पर निश्चय-पूर्वक रत होने से भी
नहीं थकता है। प्रयोजन यह है कि (आधार-शून्य) लटका हुआ
होने पर भी वह थकता नहीं है। जैसे नट थोड़ा-सा आधार लिए

(१८)

चित्र-सा विंचा हुआ

प्यारी सकेत सिधारी सखी सँग स्याम के काम मँदेसनि के मुख,
सूनो इतै रँगभोन चितै चित मोन रही चकि चौकि चहूँ रुख ;
एकहि बार रही जकि ज्यों कि त्यों भौंहनि तानि कैमानिमहादुख,
देव कछू रदचोरीदै चोरी सुहाथ की हाथ रहीमुख की मुख॥१३२॥

विप्रलब्धा नायिका का वर्णन है ।

सकेत (संकेत) = संकेत-स्थान । जकि = ठिठक करके । रद = दाँत ।

पीछे परचोनै चीनै संग की सहेती, आगे

भार डर भूषन डगर डारै छोरि-छारि ;

मोरै मुख मोरनि त्यों चौकति चकोरनि, त्यों

भौरनि की भीर भीरु देखै मुख मोरि-मोरि ।

एक कर आली कर ऊपर ॥ दी धरे, हरे-

हरे पग धरै देव चलै चित चोरि-चोरि ;

दूजे हाथ साथ लै सुनावति बचन, राज-

हंसनि चुनावति मुकुत-माल तारि-तोरि ॥ १३३ ॥

रहने पर भी निराधार नृत्य करनेवाले कहे जाते हैं, वैसे ही लटकन नथ का थोड़ा-सा आधार लिए रहने पर भी देखने में निराधार-सा दिखाई देने से यहाँ पर निराधार ही कहा गया है । निरत-शब्द का अर्थ निश्चयेन रत का है, तथा यह शब्द नृत्य का अपभ्रंश भी कहा जा सकता है ।

लटकन का चटसार (पाठशाला) इस कारण से चटुल (चंचल) कहा गया है कि नथ सदा डुलता ही रहता है ।

इस छंद में कवि ने नायिका का अच्छा चित्र प्रदर्शित किया है ।
परबीन = प्रवीण, चतुर । बीनै = बटोरती हैं ।

पत रंग सारी गोरे अंग मिलि गई देव,
श्रीफल-उरोज-आभा आभासै अधिक-सी ;
छूटी अलकनि छलबनि जल - बूँदन की,
बिना बेंदी बंदन बदन - सोभा बिकसी ।
तजि-तजि कुंज - पुंज ऊपर मधुप - गुंज
गुंजरत मंजु ख बोलै बाल पिक-सी ;
नीची उकसाइ, नेकु नयन हँसाय, हँसि
ससि-मुखी सकुचि सरोवर तैं निकसी ॥ १३४ ॥
नायिका के स्नान का वर्णन है । बंदन = ईश्वर ।

(१६)

दर्शन-मिलन

औचक ही चितई भरि लोचन वा रस के बस है चुकी चेरियै,
मोहक मोहूपे हों नहीं सूझत बूझत स्याम घने तम घेरियै* ;
आँनद के मद के नद मैं मनु बूड़ि गयो दद मैं नहीं हेरियै ,
कै उलटो सब लोक लगै किधौं देव करीउलटीमतिमेरियै ॥ १३५ ॥

नायिका के प्रेमाधिक्य का वर्णन है ।

* हे मोहनेवाले, मैं स्वयं अपने को नहीं दिखाई देती । जान पड़ता है, कृष्ण-रूपी घने अंधकार ने मुझे घेर लिया है ।

नायिका नायक पर एक ही दृष्टि से उन्मत्त हो गई है ।

पहिले सुनि राख्यौहोभाख्यो सखीरसचाख्योअचानककानपुटी,
लखि चित्र-चरित्र लख्यो सानेअवतौखिन आँखिनआँखिजुटी;
उमग्या मनु देव लग्यो पनु सो गुरुबन्धुनि का धन-रासिलुगो,
कुत्त-कानि कीगाठितेछूट्याहियो,दियत कुन-कानिकगाँठिछुटा॥

इस छंद में कवि नायक के चारों प्रकारों के दर्शनों का वर्णन करता है। यथा-अरण्य, चित्र-दर्शन, स्वप्नावलोकन तथा प्रत्यक्ष दर्शन, ये चार प्रकार के दर्शन कहलाते हैं।

कानपुटी = कानों के रंध्र। पनु=रण। कानि=मर्यादा।

सारसी सारस, हसिती हंस, चकारी चकार मिले सुख लूटैं,
देव चित चक्रे चक्रा बिजुरे निमि के बिष-घूँट-से घूँटैं;
केते कपात मृगो मृग रो युग जावैं न जो युग योग ते फूटैं,
फूजो लता रस के बस दीरत भौर के भारन डार न टूटैं॥१३७॥

दंपति-मिलन के उदाहरण।

बिष-घूँट-से घूँटैं = बिष-के से घूँट निगलते हैं (बिष-घूँट के निगलने में जो समय लगता है, वह नितांत दुःखद होता है। उसी प्रकार रात कटती है)।

आपुस मैं रस मैं रहसैं बहसैं बनि राविका कुंजबिहारी,
स्यामा सराहति स्याम कि पागहि,स्याम सराहतस्यामाकिसारी;
एकहि आरसो देखि कहै तिय नीके लगौ पिय प्यौ कहै प्यारी,
देवजू बालमबाल कोवाद बिलाकिभई बलिहौबलिहारी॥१३८॥

युगल-विलास।

रहसैं = विनोद करते हैं। भई बलि हौं बलिहारी = बलि जाऊँ, मैं निष्ठावरु हो गई।

दूनह को देखत हिए में हूलफूल है
 बनावति दुकूल फूल फूलनि बसति है ;
 सुनत अनूप रूप नूतन निहारि तनु
 अतनु तुला में तनु तोलति सचति है ।
 लाज-भय-मूल न उधारि भुज - मूलन
 अकेली है नवेली बाल केली में हँसति है ;
 पहिरति हेरति उतारति धरति देव
 दोऊ कर कंचुकी उकासति-कसति है ॥१३६॥

नायक के दर्शन से नायिका के मन में तन्मयता एवं उद्वेग (चित्त की आकुलता) उत्पन्न होता है । नूतन = नवीन । अतनु = नहीं है तनु जिसके, अर्थात् कामदेव । सचति है = सचेत होती है । मूलन = जड़ों । फूल फूलनि बसति है = प्रतिफूल को दुकूल में इतने विचार से लगाती है, मानो प्रत्येक फूल में स्वयं बस जाती सुनत है । = सुनती थी । हूल फूल = लोट-पोट । लाज-भय-मूल न = लज्जा अथवा भय का मूल उसमें नहीं है, अर्थात् प्रौढ़ा है ।

आँखिन आँखि लगाए रहै सुनिए धुनि कानन को सुखकारी,
 देव रही हिय में घरु कै न रुकै निसरै बिसरै न बिसारी ;
 फूल में वासु ज्यों मूज सुवासु को है फल फूलि रही फुल्लवारी,
 प्यारी उज्यारी हिएभरि पूरि है दूरिन जीवन-मूरि हमारी ॥१४०॥

नायक अपनी नायिका का हृदयस्थ होना प्रकट करता है ।
 निसरै = निकले । जीवन-मूरि = जीवन की जड़^१ अर्थात् जीव-नावलंब ।

रीम्कि-रीम्कि, रहसि-रहसिॐ, हँसि-हँसि छठें,
 साँसै भरि, आँसू भरि कहत दई - दई ;
 चौंकि-चौंकि, चकि-चकि, उचकि-उचकि देव,
 जकि-जकि, बकि-बकि परत बई-बई† ।
 दुहुन के रूप - गुन दोऊ बरनत फिरैं,
 घर न थिरात रीति नेह की नई-नई ;
 मोहि-मोहि मोहन को मन भयो राधामय,
 राधा - मन मोहि-मोहि मोहनमई भई ॥ १४१॥
 राधा और कृष्ण के अन्योन्य प्रेम का वर्णन है। इस छंद में
 भाव-समुच्चय की मुख्यता है ।

(२०)

प्रेम

जाके मद मात्यों सो उमात्यों‡ न कहूँ है कोई,
 बूझ्यो उल्लयों न तरयों सोभा-सिंधु सामुहै ;
 पीवत ही जाहि कोई मरयों, सो अमर भयो,
 बौरान्यों जगत जान्यों मान्यों सुख-धामु है\$ ।

ॐ प्रसन्न होकर ।

† अलग ।

‡ निर्मद हुआ ।

\$ दुनिया ने उसे पागल जाना, किंतु प्रेमी ने वही सुख का
 घर माना ।

चख के चखक भरि चाखत ही जाहि फिरि

चाख्यो ना पियूष कछु ऐसो अभिरामु है* ;

दंपति सखर ब्रज औतरयो अनूप सोई

देव कियो देखि प्रेम रस प्रेम नामु है ॥ १४२ ॥

चखक (चषक) = मद्य पीने का पात्र । चख = चखु । अभिरामु = आनंददायक ।

एकै अभिलाख लाख - लाख भाँति लेखियत,

देखियत† दूसरो न देव चराचर मैं ;

जासों मनु राचै तासों तनु - मनु राचै, रुचि

भरि कै उघरि जाँचै साँचै करि कर मैं ।

पाँचन के आगे आँच लागे ते न लौटि जाय,

साँच देइ प्यारे की सती लौ बैठि सर मैं‡ ;

प्रेम सो कहत कोई ठाकुर न ऐंठौ, सुनि

बैठौ गड़ि गड़िरे तौ पैठौ प्रेम-घर मैं\$ ॥ १४३ ॥

* वह प्रेम कुछ ऐसा रम्य है कि नेत्र के प्याले में भरकर जिसने उसे पिया, उसने फिर अमृत को भी न चखा (अर्थात् अमृत की भी परवा न की) ।

† प्रेमी के अतिरिक्त चराचर में कोई दूसरा देखता ही नहीं ।

‡ लौ-सर (ज्वाल के तालाब) में प्यारे (शिव) की सती की भाँति बैठकर सत्यता प्रकट करे । जैसे सतीजी ने अग्नि में पैठकर शिव की सत्यता तथा उनमें अपना प्रेम प्रकट किया, वैसे ही अपने पति में शुद्ध स्वकीया प्रेम रखे । यह भी अर्थ है कि सती लौ (की भाँति) सर (सरा, चिता) में बैठकर ।

\$ प्रेम उसे कहते हैं, जिससे कोई स्वामित्व का अहंकार नहीं कर सकता । यदि प्रेम का नाम ही सुनकर गड़कर गड़िरे में बैठो (पूरी नम्रता रखो), तो प्रेम के घर में प्रवेश करो ।

सती का उदाहरण देकर कवि शुद्ध प्रेम का वर्णन करता है। बड़ा ही विशद वर्णन है। राचै (रच जाना) = प्रेम-विवश होना। साँचै करि कर मैं = सचाई को हाथ में लेकर (सच्चे कर्म करके)। गढ़ि = धसकर। ठाकुर = स्वामी।

कोकुलॐयाब्रजगोकुलदोकुल दीप-शिखा-सी ससी-सी रहींभरि,
त्यौं न तिन्हैं हरि हेरत री रँगराती न जो अँगराती गरे परि ;
जो नबला नव इंदु-कला† ज्यों लची परै प्रेम रची पिथ सों लरि,
भेटत देखि बिसेखि हिए ब्रजभूभुज‡ देव दुहूँ भुज सों भरि।

इस ब्रजगोकुल में कौन कुल दो कुल (भ्रष्ट) है ? (तथापि) सबमें दीप-शिखा एवं शशि के समान सुंदरियाँ भरी पड़ी हैं। जो नायिका केवल विषय-वासना-युक्ता है, किंतु रंग (प्रेम) में रत नहीं, वह चाहे गले भी पड़े, तो भी भगवान् उसे उस प्रकार नहीं हेरते (जैसे प्रेमवती को)। जो नवेंदु-कला-समान यौवन-युक्ता नव-वधू प्रेमवती होकर नम्रता ग्रहण करे, चाहे पति से लड़े भी, उसे ब्रजपति विशेष करके देखकर दोनो भुजाओं से भरकर अंक लगाते हैं।

लची परै = झुकी पड़ती हैं, अर्थात् नम्र होती हैं। अँगराती = अंग से रत हैं, अर्थात् केवल अंग भव-विषय-वासना में रत हैं, प्रेम में नहीं।

जीव सों जीवन, जीवन सों धन, सो धन जीवित नाथ निबोधो,
या चित की गति ईठ की ईठी लौईठ की डीठि अनीठ लौंसोधो;

ॐ इस गोकुल में दो कुलवाला (कुल-भ्रष्ट) कौन कुल है ? यह भी अर्थ है कि ब्रज और गोकुल (के) दो कुलों में।

† दूज का चाँद।

§ राजा (ब्रजराज)।

वा मनमोहन को वह मोहन सोहन सुंदर रूप बिरोधो ,
या जिय मैपिय मूरति है पिय मूरति देव सुमूरति कोधो॥१४५॥

जीव से जीवन मिलता है, और जीवन से धन, किंतु स्वामी के जीवित रखने को वह धन भी गया, अर्थात् यदि चला जाय, तो हानि नहीं। इस चित्त की गति इष्ट (प्रीति-भाजन) की प्रीति तक है, और उस प्रीति-भाजन की सीधी निगाह अनिष्ट तक खोजा है ; अर्थात् प्रीति-भाजन की सीधी निगाह के लिये केवल अनिष्ट सीमा समझा है, शेष कोई सीमा नहीं है। चित्त उस मनमोहन के शोभायमान सुंदर रूप में अटका है। इस मेरे चित्त में प्रियतम की मूर्ति है, और प्रियतम की मूर्ति सुंदर मूर्ति (भगवान्) की ओर है ; अर्थात् प्रियतम ही भगवान् हैं।

निबोधो = भली भाँति जाना। बिरोधो=अटकी हुई ('रोधन, शब्द से बना है)। कोधो = तरफ़।

जेठी बड़ी ते अमेठीसि भौंहनि रूछ महा मन सूछम सीछैं ,
देवजू बातनिहीसों हितौतिसी सौति सखीसु चितौति तिरीछैं॥
लाज‡ की आँचननि याचित राचननाचनचाई हौं नेहनछीछैं,
चाह भई फिगैयाचित मेरेकिछाहँ भई फिरौनाह केपीछैं॥१४६॥

॥ सखी मानो सौति के समान होकर टेढ़ी दृष्टि से देखती है, और केवल बातों में हित करती है, वास्तविक नहीं। इस पद का भाव निम्न-लिखित उर्दू-छंद से मिलता है—

यँ कहाँ कि दोस्ती है कि हुए हैं दोस्त नासेह,

कोइ चारासाज़ होता, कोइ ग़मगुसार होता।

‡ यह चित्त लाज की आँखों से नहीं रचा (अनुरक्त) है, अथच अच्युत प्रेम ने मुझे नाच नचाया है।

अमेठी = ट्रेडी । रुड़ (रुह) = रूखा । सूछम = सूक्ष्म ।
सीछें = शिक्षा देती हैं । छीछें = चीण ।

देखे न परत देव देखिवे की परी बानि,
देखि-देखि दूनी दिख-साध उपजति है ;

सरद उदित इंदु बिंदु-सो लगत, लखे
मुदित मुखारबिंदु इंदिरा लजति है ।

अद्भुत ऊख-सी पियूष-सी मधुर बानि
सुनि-सुनि स्रवनन भूख-सी भजति है ;

मंत्रो कह्यो मैन परतंत्री कह्यो बैनन को

बिना तार तंत्री जीभ जंत्री-सी बजति है ॥१४॥

नायिका का सौंदर्य (तथा नायक का नायिका के प्रति प्रेम)
वर्णित है । बानि = स्वभाव । साध = इच्छा । तंत्री = वीणा, सारंगी
आदि तारवाले बाजे ।

कठिन कुठाट काठ कुंठित कुठार कूट

रूठि हठ कोठरी कपाट कपटन की ‡ ।

❀ नायिका की छवि देखकर नायक की यह दशा होती है कि उसका
मं त्री कामदेव हो जाता है, उसके बैन परतंत्र हो जाते हैं, और उसकी
जिह्वा बिना तार की वीणा के समान होकर भी यंत्र की भाँति बजने
लगती है, अर्थात् वह नायिका के रूप की अञ्जुल प्रशंसा करने लगता है।

‡ हठ भव रूठने (नाराज़ होने) रूपी कपट (रूपी)
कपाटों की जो कोठरी है, उसमें कठिन कुठाट-रूपी ऐसा काठ लगा
है, जिसके गढ़ने में कुठारों (कुल्हाड़ियों) के कूट (पर्वत, समूह)
गोंठले हो गए हैं । प्रयोजन यह है कि प्रेम-पात्री के साथ हठ एवं
रूठना बहुत बुरा है, और उसमें प्रायः कपट का समावेश रहता है ।

चीकनी सुहाग नेह हैम की सराँग पर

प्रेम-पाउ परत न राह रपटन की ॐ ।

बरतनु बरत उबारिए सुरत-बारि

वारियै न बिरह-बयारि भूपटन की † ;

देवजू बिदेह‡ दाह देह दहकति आवै

आँचल-पटनि ओट आँच लपटन की § ॥१४८॥

विरह-निवेदन है ।

हैम की सराँग पर=कंचन के खंभ पर । यहाँ खंभ से उस मलखंभ का प्रयोजन है, जो तेल आदि लगाकर चिकना किया जाता है, और जिसके सहारे से नट कला करते हैं । बरतनु बरत उबारिए सुरत-बारि=अच्छे शरीर की दाह को स्मरण-जल से शांत कीजिए । पीछे तिरीछे कटाच्छन सों इत वै चितवै रा लला ललचो हैं, चौगुनो चाउ चबायनि के चित चाह चढ़े हैं चबाउ मचो हैं;

ॐ सौभाग्य भव प्रेम का जो सोने का मलखंभ है, वह चीकना होने से उस पर रपटने की राह है, सो उस पर प्रेम का पैर नहीं जमता है । प्रयोजन यह है कि प्रेम पर स्थिरता के लिये बड़ी दृढ़ता की आवश्यकता है ।

† (नायिका का) श्रेष्ठ शरीर (विरहाग्नि से) जलता है, उसकी विरह-बयारि के भूपटों (की तेज़ी) को बचाइए तथा सुरत-रूपी जल से उसे उबारिए ।

‡ कामदेव ।

§ आँचल-पटों की ओट भी विरहाग्नि की लपटों की आँच लगती है ।

जोवन आयो न पाप लग्यो कवि देव रहैं गुरु लोग रिसो हैं,
जी मैं लजैए जुजैए कहूँ, तितपैए कलंक चितैए जु सां हैं ॥१४६॥

मध्या नयिका का प्रेम वर्णित है । चवायनि=चर्चा तथा निंदा करने-
वाले । सोहैं=सामने ।

पीर सही घर ही में रही कवि देव दियो नहिं दूतिन को दुख,
काहुकि बात कही न सुनी मनु मारि बिसारि दियो सिगरोमुख;
भीर में भूलि कहूँ सखि मैं जबते ब्रजराज कि ओर कियो रुख,
मोहि भट्ट तबते निसि-दौस चितौत ही जात चवाइन के मुख ॥

चवाइन = चर्चा तथा निंदा करनेवालियों ।

कंचन के कलसा कुच ऊँचे समीपहि मैन महीप ठयो है,
बाजी खिलाय कै बालपनो अपनो पन लै सपनो सो भयो है;
देव कहा कहौं ठाकुर ईठ गयो दुरियो दुरयोग नयो है,
जोवन-ऐंठ में पैठत ही मनमानिकगाँठिते ऐंठि लयो है ॥१५१॥

क्या कहूँ कि इष्ट (प्रिय) ठाकुर (स्वामी, नायक) छिप गया ।
यह एक नया दुर्योग (बुरा डौल) हो गया । उस नायक ने नायिका
के यौवन की ऐंठ में पैठते ही माणिक्य- सा मन ऐंठ लिया ।

नायिका के वियोग का वर्णन है । ठयो है = ठहरा हुआ है ।
बाजी = खेल । पन = प्रतिज्ञा । गाँठि ते = पास से । ऐंठि लयो है =
छीन लिया है ।

देव मैं सीस बसायौ सनेह कै भाल मृगम्मद बिंदु कै भाख्यो,
कंचुकी मैं चुपरयो करिचोवा लगाय लियोउरसों अभिलाख्यो ।
लै मखतूत गुहे, गहने रस मूरतिवंत सिंगार कै चाख्यो,
साँवरे लाल को साँवरो रूप मैं नैननि को कजरा करि राख्यो ।

सनेह = प्रेम; स्निग्ध द्रव्य (तैलादि) से भी मतलब है ।
 मृगम्मद = कस्तूरी । मखतूल = काला रेशम ।

कोऊ कहौ कुलटा, कुलीन - अकुलीन कहौ,
 कोऊ कहौ रंकिनि कलंकिनि कुनारी हौं;
 कैसो परलोक, नरलोक बर लोकन में,
 लीन्ही में अलोक लोक-लीकन ते न्यारी हौं ।
 तनजाहि, मन जाहि, देव गुरुजन जाहि,
 जीव किन जाहि टेक टरति न टारी हौं;
 वृंदावनवारी बनवारी की मुकुटवारी,
 पीत पटवारी वडि मूरति पै वारी हौं ॥१५३॥

नायिका के अगाध प्रेम का वर्णन है । बनवारी = चरणों तक की
 माला धारण करनेवाला (बनमाली), अर्थात् भगवान् बनवारी
 की वृंदावनवाली, पीत पटवाली एवं मुकुटवाली मूर्ति पर नायिका
 न्योछावर है । अलीक = लोक-मर्यादा से भिन्न ।

खीमे दूख पाऊँ हौं न रीमे सुख पाऊँ, मेरे
 खीमे-रीमे एकै मनु राग्यो सोई रागि चुक्यो;
 जस-अपजस, कुवड़ाई औ' बड़ाई, गुन-
 औगुन न जाने जीव जाग्यो सोई जागि चुक्यो ।
 कौने काज गुरुजन बरजैं जु दूरजन,
 कैसेऊ न नेम-प्रेम पाग्यो सोई पागि चुक्यो;
 लोगनि लगायो सुतौ लागो अनलागो देव,
 पूरो पन लागो मनु लागो सोई लागि चुक्यो॥ १५४॥

खीभे = क्रोध करने पर । रागि चुक्यो = प्रेम में मग्न हो चुका ।
 बरजै = रोकेँ । पागि चुक्यो = लिपट चुका । लोगनि लगायो =
 लोगों ने (कलंक) लगाया । जागि चुक्यो = प्रेम का ज्ञान प्राप्त कर
 चुका ।

काहू कि कोई कहावतिहौं नहिं जाति त पाँति न जातेखसौंगी,
 मेरियै हास कगैकिन लोग हौं को॥कवि देवजू काहि हसौंगी;
 गोकुलचंद की चेरी चकोरी है मंद हँसी मृदु फंद फँसौंगी ,
 मेरी न बात वको बलि† कोईहौं बावरी है ब्रज-बीच बसौंगी ।

खसौंगी = गिरूंगी, पतिता होऊँगी ।

साँझ को-सो चंद भोर को-सो करि राख्यौ मुख,
 भोर की-सी कांति भाँति साँझ की-सी भई अनि‡;
 साँझ भोर को-सो नभ देखिए मलीन मन ,
 साँझ भोर चक्रवा चकोर की-सी हित-हानि\$ ।

॥ मैं हूँ ही कौन, और किसे हँसूंगी ?

† बलि जाऊँ, निछावर होऊँ ।

‡ जो मुख संध्या के चंद्र-सा मनोहर था, उसे प्रातःकाल के
 प्रकाश-हीन चंद्र-सा कर रखा है, अथवा प्रातःकाल की-सी मुख-
 शोभा साँझ की उतरी हुई शोभा-सी हो गई ।

\$ संध्या तथा प्रातः का आकाश प्रकाश की कमी से मलीन-
 समझा गया है । शाम को चक्रवाक की तथा सुबह चकोर की हित
 हानि है ।

कैसे करि कोसों कासों कहों कैसी करों देव ,
 कीनी रिपुकेसो कैसे केसी की सुकैसी❀ बानि ;
 कैसी लाज कैसे काज कैसोधों सखी समाज,
 कैसे घर कैसे बरु कैसे डरु कैसी कानि ॥ १५६ ॥

कोसो = कैसा, सदृश । भोर = प्रातःकाल । कोसों = बुरा चेतों ।
 रिपुकेसी (केशी-रिपु) = केशी नाम के असुर का शत्रु अर्थात्
 कृष्ण (नायक) ।

साँकरी खोरि बखोरि हमैं किन खोरि लगाय खिसैबो करौ कोइ,
 हारेहू हाय नहीं करिहैं हिय घायन लोन धिसैबौ करौ कोइ ;
 देवजू धीर धरो सुधरो किन ओठन दंत पिसैबो करौ कोइ ,
 रूप हमैं दर सैबो करौ अरसैबो करौ कि रिसैबो करौ कोइ ।

बखोरि = छेड़कर । खोरि = गली । दोष ।

कैसा कुलबधू, कुल कैसे कुलबधू कौन,

तू है, यह कौन पूछे काहू कुलटाहि री ;

कहा भयो तोहि कहा काहि तोहि माहि कोधौं,

कीधौं और काहै और कहा न तौ काहि री ।

जातिहीसों जाति, को है जातिकैसे जाति, एरी,

तोसों हों रिसाति, मेरी मोसों न रिसाहि री ;

लाज गहु लाज गहु, लाज गहिबे ते रही,

पंच हँसिहैं री, हौं तो पंचन ते बाहिरी ॥ १५८ ॥

❀ केसी की सुकैसी (की तरह) बानि (देव) कीनी ।
 प्रयोजन यह है कि श्रीकृष्ण (केशी के शत्रु) ने केशी दैत्य के साथ
 जैसी शत्रुता की थी। वैसी ही मेरे साथ की है ।

इस छंद में व्यंजना और ध्वनि-नामक काव्यांगों की अच्छी बहार है ।

भारी प्रेमोद्विग्नता का वर्णन है ।

सखी-वचन—तू कैसी कुल-वधू है ?

नायिका का उत्तर—कुल कैसा होता है, और कुल-वधू है कौन ? प्रयोजन यह है कि यदि शुद्ध प्रेम के कारण कुल बिगड़े या कुल-वधू होने में संदेह हो, तो लोगों द्वारा माना हुआ कुल का लक्षण ही अशुद्ध है । यदि लोग प्रेमिनी का उच्चाशय समझे बिना ही उसे कुलटा समझें, तो यों ही सही ; मुझे भी उनकी परवा नहीं है ।

सखी-वचन—तू कुल-वधू है ।

नायिका का उत्तर—किसी कुलटा से यह कौन पूछता है ? अर्थात् मैं तो कुल के साधारण लक्षण के अनुसार कुलटा हूँ, क्योंकि अनभिज्ञ लोग शुद्ध प्रेम नहीं समझ पाते ।

सखी-वचन—तुझको क्या हुआ है ? सखी ने उसके उच्च भावों को न समझकर ही यह प्रश्न किया है ।

नायिका का उत्तर—क्या ? किसको ? तुझको या मुझको या किसी और को ? और नहीं तो किसको ? प्रयोजन यह कि मुझे तो कुछ नहीं हुआ है, शायद तुम्हीं को या किसी और को हुआ हो ।

सखी-वचन—तू जाति से जाती है (पतित हुई जाती है) ।

नायिका का उत्तर—जाति क्या है और कैसे जाती है ? प्रयोजन यह कि शुद्ध प्रेम से जाति नहीं जाती । यदि कोई इसके विपरीत माने, तो उसका जातिवाला लक्षण ही अशुद्ध है ।

सखी-वचन—मैं तुझसे रिसाती हूँ ।

नायिका का उत्तर—तू मेरी है, मुझसे मत क्रोध कर, मैंने किया ही क्या है ?

सखी-वचन—लाज करो, निर्लज्ज मत हो ।

नायिका का उत्तर—मैं लाज करने से रही, अर्थात् तेरे विचारों-वाली लाज न करूँगी। प्रयोजन यह है कि सच्ची लाज तो मुझमें पूर्णतया है ही, तेरी समझी हुई थोथी लाज को क्यों पकड़ूँ ?

सखी-वचन—अरी ! लोग-बाग हँसेंगे।

नायिका का उत्तर—मैं पंचों से बाहर हूँ। प्रयोजन यह है कि साधारण जन-समुदाय शुद्ध प्रेम के उच्च आदर्श से पूर्णतया अनभिज्ञ है। ऐसी मूर्ख-मंडली में रहना किसी उच्च प्रेमी को शोभा नहीं देता।

बोरयो बंस बिरद* मैं बीरी भई बरजत,

मेरे बार-बार बीर कोई पास पैठौ जनि ;

सिगरी सयानी तुम बिगरी अकेली हौं हीं,

गोहन मैं छाँड़ौ मोसों भौहन अमैठौ जनि।

कुलटा कलंकिनी हौं कायर कुमति कूर,

काहू के न काम की निकाम याते ऐंठौ जनि ;

देव तहाँ बैठियत जहाँ बुद्धि बदै, हौं तो

बैठी हौं बिकल, कोई मोहि मिलि बैठौ जनि॥१५६॥

विरहिणी नायिका है। गोहन = रास्तों।

स्याम स्वरूप घटा ज्यों अनूपम नीलपटा तन राधे के भूमै,
राधे के अंग के रंग रँग्यो पट बीजुरी ज्यों घन सो तन-भूमै† ;

* बिरद = नेकनामी = कीर्ति।

† शरीर की भूमि, अर्थात् शरीर में।

हैं प्रतिमूरति दोऊ दुहू की बिधो प्रतिबिम्ब वही घट दूमै ,
एकहि देव दुदेह दुदेहरे देव दुधा यक देह दुहू मै* ॥१६०॥

कवि मीलितोन्मीलित अलंकार द्वारा युगल स्वरूप का वर्णन करता है । बिधो (विधि) = तरह; प्रकार । दुधा = द्विधा (द्वाभ्यां प्रकारेण) दो प्रकार से ।

जे बिन देखे गए दिन बीति नयो पछिताउ अरो हिय हैए ,
देवजु देखि उ-हैहौं दुखी भई या जिय को दुख काहि दिखैए ;
देखे बिना दिखसाधन हो मरि देखु री देखत हो न अघैए ,
देखत-देखत-देखत हो रही आपनी देखौ न देखन पैए॥१६१॥

अरो = अड़ा । दिखसाधन = देखने की साधें (कामनाएँ) ।
अपनी देह इस कारण से नहीं देख पाती है कि नायक को देखकर
आपे को भूल जाती है ।

दिना दस यौवन जीवन री मरिए पचि होइ जुपै मरिबे न ;
सबै जग जानत देव सुहाग की संगति भोन रही भरिबे न+ ;
कहा कियो सौति कहाय कैकाहूनरौ पिय लोभ तऊलरिबेन †,
असीसनहू\$कोसहीकरिबे नकछूअबमोहिरही करिबेन ॥१६२॥

* वास्तविक देव एक ही है, जो दो देहों-रूपों देहरों (मंदिरों)
में है, अथच एक ही देव दो भाग होकर दोनो देहों में है ।

+ सोहाग की संपत्ति घर में भरना शेष नहीं है, अर्थात् वह
पूर्णतया प्राप्त हो चुकी है ।

† यदि कोई सपत्नी पति के लालच से मुझसे लड़े, तो भी मुझे
उससे लड़ना नहीं है ।

\$ आशीर्वचनो की भी यथार्थता पूर्ण करनी शेष नहीं है, अर्थात्
सारे आशीर्वाद भी सफल हो चुके हैं । इन कारणों से नायिका कृत-
कृत्य है, और कहती है कि मुझे कुछ करना शेष नहीं है ।

शांति को प्राप्त हुई नायिका का वर्णन है । पचि= बहुत परिश्रम करके, पक करके ।

जागत-जागत खीनॐ भई, अब लागत संग सखीन को भारो,
खेलिबोऊ हँसिबोऊ कहा सुख सों बसिबो बिसे बीस बिसारो;
तो सुधि दौस गँवावति देवजू जामिनि जाम मनौ जुग चारो‡,
नीरज-नैन निहारि नैनन धीरज राखत ध्यान तिहारो§॥१६३॥

यहाँ सखी द्वारा नायिका का नायक से प्रेम निवेदन है ।

बिसे बीस = बीस बिस्वा (पूर्णतया) । भारो = भारी, बोझा, असह्य ।

पहिले सतराय रिसाय सखी जदुगाय पै पाय गहाइए तौ,
फिरि भेंटि भट्ट भरि अंक निसंक बड़े खिन लौं उर लाइए तौ;
अपनो दुख औरन को उपहास सबै कवि देव बताइए तौ,
घनस्यामहि नेकहूँ एकघरीकोइहाँलगिजोकरि पाइएतौ॥१६४॥

अभिलाषा का वर्णन है । नायिका का सखी के प्रति कथन है ।

सतराय=अप्रसन्न होकर । बड़े खिन (क्षण) लौं = बड़ी देर तक ।

लाल बुनाई हौ, कोहैं वे लाल, न जानती हौ तौ सुखी रहिबोकरि,
रीसुख काहेको देखे बिना दिखसाधन ही जियरान परो जरि;
देव तौ जानि अजान क्यों होति यही सुनि आँसुन नैनलएभरि,
साँचेबुलाई उलावन आईहहा कहिमोहि कहा करिहैं हरि॥१६५॥

दिखसाधन ही = दर्शन की इच्छाओं से ।

ॐ क्षीण ।

‡ रात के चारो पहर चारो युगों के समान हो गए हैं ।

§ तुम्हारा ध्यान ही उसका धैर्य रखता है ।

जिन जान्यौ वेद ते तौ बाद कै बिदित होंहिं,
 जिन जान्यौ लोक तेऊ लीक पै लरि मरौ ;
 जिन जान्यौ तपु तीनों तापन सों तपौ, जिन
 पंचाग्नि साध्यो ते समाधिन परि मरौ ।
 जिन जान्यौ जोग तेऊ जोगी जुग-जुग जियौ,
 जिन जान्यौ जोति तेऊ जोति लै जरि मरौ ;
 हौं तौ देव नंद के कुमार तेरी चेरी भई,
 मेरो उपहास क्यों न कोटिन करि मरौ॥१६६॥

इस छंद में कवि वेद में केवल वाद, लोक में लीक, तप में त्रिताप, पंचाग्नि में समाधि, योग में दीर्घायु और ज्योति में उष्णता-मात्र देखता है, अथच प्रेम अथवा भक्ति को सर्व-प्रधान मानता है ।

बाद = विवाद । लीक = सीमा (लोक-रीति) । तीनों तापन = तीनों ताप, अर्थात् आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ।

बैठो सीस-मंदिर मैं सुंदरि सवार ही की,
 मूँदि कै केवार देव छबि सों छकति है ;
 पीत-पट लकुट मुकुट बनमाल धरि,
 भेष करि पी को प्रतिबिंब मैं तकति है ।
 होति न निसंक उर अंक भरि भेंटिवे को,
 भुजन पमारति समेटति जकति है ;
 चौंकति चकति उचकति चितवति चहूँ,
 भूमि ललचाति मुख चूमि न सकति है ॥ १६७ ॥
 सवार ही = प्रातःकाल से । लकुट = छड़ी ।

प्रेम - चरचा है अरचा है कुल नेम न
 रचा है चित और अरचा है चित चारी को॥
 छोड़यो परलोक नर-लोक बर लोक कहा,
 हरख न सोक ना अलोक नर-नारी को ।
 घाम सित मेह न बिचारै सुख देहहू को,
 प्रीति ना सनेह डरु बन ना आँधारी को ;
 भूनेहू न भोग, बड़ी बिपति बियोग-बिथा,
 योगहू ते कठिन संयोग पर-नारी को ॥१६८॥

नायिका परकीया है । नेम न रचा है = नियमों से विरुद्ध है ।
 अलोक=आलोक, ज्योति ।

प्रेम-गुन बाँधि चित चंग† सो चढ़ायो उन,
 सुनि-सुनि बंसी-धुनि चंग‡ मुहचंग\$ की ;
 मधुर मृदंग सुर ऊरभि उत्तंग भई
 रंग परवीन ऐसी बाजनि अभंग की ।

* (मति को छोड़कर) चित पर चलनेवाले को केवल प्रेम
 की चर्चा और अर्चा है, अथच कुल-नियम उसके लिये अरचा (नहीं
 बना) है । चित किसी और और अनुरक्त नहीं है ।

† पतंग ।

‡ तेज धुमानेवाला ।

\$ मुरचंग बाजा ।

बधिक बिहंग बधू, ब्याध ज्यौं कुरंग नारि,

हनी है कुरंग - नैनी पारधी॥ अनंग की ;

संग-संग डोलत सखीन के उमंग - भरी,

अंग-अंग बठै री तरंग स्याम-रंग की ॥ १६६ ॥

गुन = डोरा । उतंग=ऊँचा । कुरंग = मृग । कुरंग-नैनी =
मृग-नैनी (नायिका) ।

सुखसार सिवार सरोवर ते ससि सीस बँधे बिधि के बल सों†,

चकई-चकवा तजि गंग-तरंग अनंग के जाल परे छल सों‡ ;

कमलाकर ते कटि कानन में कल हंस कलोलत हैं कल सों\$,

चढ़िकाम के धाम ध्वजा फहरात सुमोनन काम कहा जल सों× ।

नायिका के प्रेम-योग्य नेत्रों का वर्णन है ।

सिवार = शैवाल । अनंग = कामदेव । कमलाकर = जलाशय ।

कल = मधुर ध्वनि ।

॥ बहेलिया, शिकारी ।

† नायिका के नेत्र-मीन मानो सुख-पूर्ण सरोवर के शैवाल से निकाले जाकर दैव-योग से चंद्रमा के माथे पर (नायिका के मुख-चंद्र पर) बाँधे गए हैं ।

‡ या कि गंगा की तरंगों को छोड़कर चकई-चकवा छल से काम के जाल में पड़े हैं ।

\$ अथवा जलाशय से निकलकर हंस का अच्छा जोड़ा वन में आराम से केलि कर रहा है ।

× यद्वा ये नेत्र नहीं हैं, वरन् काम के मंदिर की दो फहराती हुई पताकाएँ हैं । अब इन नेत्र-रूपी मीनों को जल की आवश्यकता क्या है ?

नैननि मैं ठाढ़ेई सुनावैं श्रवननि बैन,
 बैन बसैं रसना हिए हू परसी मरौं॥
 देखौं न सुनौं न बैन बोलि न मिलौं, न बिनु
 देखि-सुनि बोलि-मिलि आँसु बरसी मरौं ।
 देखत दुखति सुनि सूखति बिलाति बोल
 मिलेहू मलिन है कै लाज सरसी मरौं† ;
 एते पर देखिबे को, सुनिबे को, बोलिबे को,
 देव हियो खोलि मिलिबे को तरसी मरौं॥१७२॥

तरसी=एक प्रकार की छोटी मछली । बरसी=बरसाते हुए, अर्थात् डालते हुए । सरसी = वृद्धि से ।

ना खिन‡ टरत, टारे, आँखि न लगत पल ,
 आँखिन लगे री स्यामसुंदर सलौन से ;
 देखि-देखि गातन अघान न अनूर रस
 भरि-भरि रूप लेत आनंद अचौन से ।

❀ नायक नैनों में खड़ा (सामने प्रस्तुत) है, अथच कानों में वचन सुनाता है (बात कर रहा है), किंतु नायिका के बन जिह्वा में बसे हैं (वह अबोल है, अर्थात् उसके वचन जिह्वा का निवास नहीं छोड़ते), और तो भी हृदय में वह मछली के समान (बोलने आदि को) तड़पती है।

† लज्जाधिक्य से नायिका देखने से दुःखित होती है, बात सुनने से सूख जाती है, बोल से बिला जाती है, अर्थात् इतना सिकुड़ती है, मानो अंतर्धान हो गई है, और मिलने से मलिन होकर लाज की वृद्धि से मरी-सी जाती है ।

‡ क्षण ।

एरी कहि कोहों हों कहाँ हों कहा कहति हों,

कैसे बन-कुंज देव देखियत भौन - से ;

राधे हौ सदन बैठी कहती हौ कान्ह-कान्ह,

हा हा कहु कान्ह वे कहाँ हैं को हैं कौन-से ॥१७२॥

सादे तीन पदों में नायिका का कथन है, और आधे में दूती का ।
अचौन=कटोरा । आचमन करने का साधन ।

कान्हमई बृषभानु-सुता भई प्रीति नई उनई जिय जैसी ,
जानै को देव बिकानीमि डोलै लगै गुरु लोगन देखे अनैसी ;
ज्यौं-ज्यौं सखी बहरावति बातन, त्यों-त्यों बकै वह बावरी-ऐसी,
राधिकाप्यारीहमारी सौं तू कहिकाहि की बेनुबजाई मैं कैसी॥

अनैसी=बुरी । सौं=शपथ । बहरावति=बहलाती है ।

दुहू मुख - चंद ओर चितवै चकोर, दोऊ

चितै-चतै चोगुनो चितैवो ललचात हैं ;

हासनि हँसत बिन हाँसी बिहसत मिले

गातनि सौं गात, बात बातनि मैं बात हैं ।

प्यारे तन प्यारी पेखि पेखि प्यागी पिय तन,

पियत न खात नेक हूँ न अनखात हैं;

देखि ना थकत देखि-देखि ना मकत देव,

देखिवे की घात देखि देखि ना अघात हैं ॥१७४॥

संयुक्त प्रेम का वर्णन है । अनखात=रुष्ट होते हैं ।

❀ इस पद में जो कथन है, वह स्वयं राधिकाजी बावली-सी होकर
तथा प्रेमोन्मत्तता के कारण अपने को श्याम समझकर कर रही हैं ।

देवजू या मन मेरे गयंद को रैनि* रही दुख गाढ़ महा है ,
 प्रेम पुरातन मारग बीच टकी अटकी दग सैल-सिला है ;
 आधी उसास नदी अँसुवान की बूड़-यो बटोही चलै बलुकाहै ,
 साहुनी†है चित चीति रही अरु पाहुनी है गई नींद बिदा है ।

रैनि रही दुख-गाढ़ = रात दुःख का गढ़ा हो गई है । दग टकी =
 दृष्टि की स्थिरता (टकटकी) । बलु का है = किस बल से ।
 साहुनी = साहूकार की छी, अर्थात् ऊँचे मनवाली ।

उठी अकुलाय सुनी जब नेक कला परवीन लला ब्रजराज ,
 बिसारि दई कबि देव तुम्हें अवलोकत ही अब लोक की लाज ;
 इते पर और चबाव चलयौ बरजैं घर जे गुरु लोग समाज ,
 कहाँ लागि लाल कछू कहिए, इतनी सहिए सब रावरे काज ।

नायिका नायक से अपनी प्रेम-दशा का वर्णन करती है ।

चबाव = बुरी चर्चा, पैशुन्य ।

जागत हू सपने न तजौँ अपनेई अयानपने को अँध्यारो ,
 क्यों हू छिपातछिनौनदिनौ-निभि देह दिपै दुति देव उज्यारो ;
 नैनन ते निचुग्यौ परै नेह रुखाई के बैनन को न पत्यारो,
 दूरि रह्यो कित जीवन-मूरि जु पूरि रह्यो प्रतिबिंब ज्योप्यारो ।

* हाथी को फँसाने के लिये प्रायः रात को गड़्ढा खोदा जाता है ।

† चित्त में चीतकर (चिंता करके, विचार करके) नींद साहुनी के समान अभिमानिनी हो गई, अर्थात् बुलाने से नहीं आती, और बाहुनी के समान शीघ्र बिदा होकर चली गई ।

अयानपने का अंधकार प्रेम है। नायिका कहती है कि प्रेम मूर्खता अथवा अंधकार-पूर्ण ही सही, किंतु मुझे वह सोते-जागते छोड़ता नहीं है। वह प्रेम दिन-रात क्षण-भर को भी नहीं छिपता है। उससे देह दीप्ति-पूर्ण है, अथवा उसकी कांति उजियाली है। प्रयोजन यह है कि प्रेम को कोई मूर्खता या अंधकार-पूर्ण भले ही कहे, किंतु वास्तव में वह उज्ज्वल है। स्नेह के अर्थ प्रेम तथा तेल दोनो के हैं। स्नेह चिकना माना गया है, इसी से कथन हुआ है कि जब नेत्रों से स्नेह निचुड़ा पड़ता है, तब रूखे वचनों का एतबार नहीं है। जब प्रेमी प्रत्येक स्थान में छाया की भाँति प्रतिबिंबित है, तब वह जीवनाधार दूर कहाँ रहा ?

अरिकै वह आजु अकेले गई खरिकै हरि के गुन रूप लुही॥
 उनहूँ अपनो पहिराय हरा मुसक्यायकै गायकै गाय दुही ;
 कबि देव कहौ किन कोई कछू, तब ते उनके अनुराग लुही॥
 सब ही सों यहै कहै बाल-बधू यह देखु री माल गुपाल गुही ।

अरिकै = अड़ करके। लुही = लुभी। खरिकै = जहाँ गाएँ और ग्वाल एकत्र हों, वह स्थान।

‘खरक’-शब्द हिंदी के कोश में है। इसके माने गोशाला के हैं। चित दै चित ऊँ जित ओर सखी, तित नंदकिसोर कि ओर ठई, दसहू दिसि दूसरो देखति ना छवि मोहन की छिति माहँ छई; कबि देव कहाँ लौँ कछू कहिए, प्रतिमूरति हा उनहीं की भई, ब्रजबासिन को ब्रज जानि परैन भयो ब्रज री ब्रजराजमई ॥१७६॥

❀ लोट-पोट हुई ।

† रँगी हुई ।

ब्रजवासियों को ब्रज समझ ही नहीं पड़ता है, क्योंकि सारा ब्रज ब्रजराज (भगवान्) मय हो गया है ।

ठई = स्थित ।

ए अपनी करनी किन देखत देव कहौं न बनाइ कछु मैं ,
घायल है करसायल* ज्यों मृग त्यों उतही अतुगायल† घूमैं ;
भेटिबे को तन-ताप दुहु भुज भेटिबे को भपटैं भुकि भूमैं ,
चित्र के मंदिर मित्र तुम्हैं लखि चित्र की मूरति को मुख चूमैं ।

नायक नायिका की तस्वीर देखकर उद्विग्न हो जाता है । सखी नायिका से नायक को दशा का वर्णन करती है ।

आँखिमिहीचनि‡ खेलत मोहि दुहु भिधि सोधकहूँ नटि जाइ न ;
चोर है मोर§ कैनंदकिमोर रीजाइ छिपै पै कहूँ सटि जाइ न,
नैन-मिहीचौं जुपै उनके तजि लाज सनेह कहूँ हटि जाइन॥ ,
नाथ हा ! हाथ सरोज-से मेरे करेरे कटाच्छ कहूँ कटि जाइनx ।

* काला मृग ।

† आतुरता से, जल्दी है ।

‡ आँख-मुँ दौबल ।

§ चोर-मिहीचनी का नियम है कि प्रत्येक खेलनेवाला चोर से छिपता है, किन्तु एक बार ज़ोर से पुकार देता है कि खोजो । जिसको चोर खोज ले, वह दूसरे बार के खेल में चोर हो जाता है ।

॥ यदि लाज छोड़कर नायक के नैन बंद करूँ, तो स्नेह-वश कहीं हाथ न हट जाय कि नैन अधमीचे रह जायँ, और उसे सब देख पड़ें, जिससे खेल बिगड़ जाय ।

x हे नाथ, तुम्हारे हाथ कमल-से हैं, सो मेरे कड़े कटाक्षों से कहीं कट न जायँ ।

इस छंद में नायिका अपने प्रेमाधिक्य का कथन करती है ।

दुहू विधि सोध = दोनो प्रकार (चित्त के भीतर-बाहर) का खोज ।
 सोरकै = शोर करके । जुपै = यदि । हा ! = विस्मय । करेरे = पैने । सटि
 जाइ न = चिपक न जाय, अर्थात् ऐसा छिप जाय कि खोजे न मिले ।
 नटि जाइ न = नष्ट न हो जाय, चला न जाय । मोहि = मोहित होकर

(२१)

मन

रूप को रसिकु रसलंगदु परस लोभी
 राग ही सौँ रँग्यो बसै बासु लै अड़ाइतो॥
 मारयो नहीं जातु बिनु मारे न डेरातु घरी
 काम करे खोंटे छोटे बड़े सौँ बड़ाइतो† ।
 होइ जो हमारो कोई हितू हितकारी यासौं
 कहै समुभाय देव कुमति छड़ाइतो ;
 मानै न अनेरो‡ मनु मेरो बहुतेरो कह्यो,
 पूतु ज्यों कपूतु लरिकार्ई को लड़ाइतो ॥ १८२ ॥
 तेरो कह्यो करि-करि जीव रह्यो जरि-जरि,
 हारी पाँय परि-परि तऊ तैं न की सँभार ;
 ललन बिलोकि देव पल न लगाए तब,
 यों कल न दीनी तैं छलन उछलनहार\$ ।

॥ अडियल, हठी (पाँचो इंद्रियों के सुखार्थ मचलनेवाला) ।

† छोटे और बड़े से अपने को बड़ा समझता है ।

‡ अनियारा, अनोखा ।

\$ हे मन ! तू छलने के लिये उछलता (उत्तेजित होता) है ।

ऐसे निरमोही सों सनेह बाँधि हों बँधाई

आपु बिधि बूझ्यो माँझ बाधा सिंधु निराधार ;

परे मन मेरे तैं घनेरे दुख दीन्हें, अब

ए केवार दैके तोहि मूँदि मारौँ एक बार ॥ १८३ ॥

बिधि बूझ्यो = विधि-पूर्वक डूबा, अच्छी तरह डूब गया या फँसकर डूब गया । माँझ = बीच में । केवार = केवाड़े । कपाट पलकें हैं ।

औचक अगाध सिंधु स्याही को उमड़ि आयो,

तामैं तीनौ लोक बूड़ि गए एक संग मैं ;

कारे-कारे आखर लिखे जु कारे कागर,

सुन्यारे करि बाँचै कौन जाँचै चित भंग मैं ।

आँखिन मैं तिमिर अमावस की रैनि जिमि

जंबुरस - बुंद जमुना - जल - तरंग मैं ;

यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यो माई,

स्याम रंग ह्व करि समान्यो स्याम-रंग मैं ॥ १८४ ॥

आखर = अक्षर । जंबु = जामुन । औचक = एकाएक । कागर = कागज़ ।

मैं समुझायो नहीं समुझे मन को अपनो अपमानन सूझै, मोहन मान करै तो गरे परि देव मनैवे को जाइ अरुझै ; काको भयो सबसों बिगरो यह जाको मरे सु तौ बात न बूझै, सोति हमारी सोप्यारे की प्यारी ता प्यारेकेप्यार परोसी सोंजूझै ।

नायिका नायक के विषय में उपालंभ प्रकट करती हुई अपने मन का वर्णन करती है । अरुझै = उलझै ।

❀ जिसके वास्ते ।

सूधेहूँ नैन लखे न तबै अब पैए कहाँ जब चाहत हेरो,
कान करे नहिं कान तबै तकि कान लगे अकुलान घनेरो;
लजहि जाइ मिले उतए, इत मोहि मिले मग मेटत मेरो॥
मेटौ मनोरथ हौं इनको तौ मिटै मन मेरे मनोरथ तेरो॥१८६॥

कान करे इत्यादि—कान करे नहिं (हे नेत्र, तब तुम सचेत या सजग नहीं हुए) ।

कान तबै तकि (तब कान्ह को देख करके) कान लगे (तुमने लाज की) ।

कान लगे अकुलान—उस काल कुल-कानि में लगे हुए तुम अब व्याकुल होने लगे ।

गोत-गुमान उतै इत प्रीति सुचादरि-सी अँखियान पै खँची,
टूटे न कानि दुहू दुखदानि की देवजू हौं दुहु ओर ते ऐँची;
सील लटो न हियो पलटो प्रगटी सुनिरंतर अंतर कैँची,
या मन मेरे अनेरे दलाल है हौं नंदलालके हाथ लैबैँची॥१८७॥

उधर कुल-मर्यादा का घमंड था, और इधर प्रेम ने आँखों पर चढ़र-सी तान दी, जिससे कुल आदि कुछ देख ही न पड़ते थे । इन दोनों दुखदायियों की मर्यादा नहीं टूटती थी, जिससे नायिका का चित्त दोनों ओर खिंचता था । न तो शील (कुल-संबंधी महत्त्व) न्यून हुआ, न (प्रेम-पूर्ण) हृदय का ढंग पलटा, जिससे चित्त के अंदर सदैव स्थिर रहनेवाली कैँची-सी उत्पन्न हो गई (कैँची जब काटती है, तब उसमें दोनों ओर से एक दूसरी से प्रतिकूल शक्तियाँ काम करती हैं), तो भी मेरे मन ने अन्यायी दलाल बनकर मुझे लेकर भगवान् के हाथ बेच दिया, अर्थात् उनके प्रेमके वश कर दिया ।

॥उस काल ये नेत्र उधर लज्जा को मिल गए, तथा इधर मुझसे मिलकर मेरा (सु) मार्ग मेट रहे हैं ।

गोत-गुमान = कुल का अभिमान । कानि = मर्यादा । लटो
(लटा) = न्यून (दुर्बल) हुआ । अनेरे = अन्यायी ।

चरननि चूमि, छूवै छवानि है चकित देव,
भूमिकै दुकूलन न घूमि करि घटि गयो;
कोरे कर - कमल करेरे कुच कंदुकनि
खेलि-खेलि कोमल कपोलननि पटि गयो ।
ऐसो मन मचला अचल अंग-अंग पर,
लालच के काज लोक-लाजहि ते हटि गयो;
लट मैं लटक लोइननि मैं उलटि करि

त्रिबली पलटि कटि-तटी माहि कटि गयो ॥१८८॥

मन के साथ नायिका के नख-शिख का वर्णन है ।

नायक का मन चरणों को चूमकर, एँड़ियों को छूकर तथा दुकूलों में
भूमने से चकित होकर भी वापस न हुआ, न उसकी अधिकाधिक
अंग देखने की इच्छा घटी । अछूते कमल-समान हाथों तथा गेंदों के
समान कड़े कुचों से खेल-खेलकर वह मुलायम गालों पर छा गया ।
छवानि = एँड़ियों को । लोइननि मैं लटि करि = आँखों को उलटा
करके (मग्न होकर) ।

जीभ कुजाति न नेकु लजाति गनै कुल-जाति न बातबह्यो करै*,
देव नयो हिय नेह लगाय बिदेह कि आँचन देह दह्यो करै ;
जीव अजान न जानत जान जो मेन अयान के ध्यान रह्यो करै,
काहेकोमेरो कहावत मेरोजु पैमनमेरोन मेरो कह्यो करै ॥१८९॥

जान = ज्ञान । अयान (अजान) = अज्ञान । बिदेह = कामदेव ।

*बात बहन करती (कहती) है ।

प्रानप्यारे पति को करत अपमान, तब
 जानत न, देव अब प्रान तन खात क्यों ;
 रोगी ज्यों सुबात बात कहत सन्हारत न,
 इत उतपात* उत पात कीन पोत क्यों ।
 कोसत है आप अपसोस करै आपही ते,
 रोस करि तब तौ रिसात अब रोत क्यों ;
 पूछै किन कोई मन पीछे पछितात कहा,
 सूर छत जोय छिति मूछित होत क्यों ॥१६०॥
 कलहांतरिता नायिका का वर्णन है । सुबात = सन्निपात से पीड़ित
 दशा में प्रायः रोगी आँ-बाँ बकता है, उस दशा से अभिप्राय है ।
 उत्पात = उपद्रव । पोत = जहाज़ । छत = छत । जोय = देख करके ।

(२२)

विरह

आई नहीं तन में तरुनाई भई नहीं स्याम के संग सँयोगिनि,
 कौने सिखाई धौं सीख कहा सुभिरै धरि ध्यान मनो जुगजोगिनि;
 भोजन बास न हास बिलास उसास भरै मनौ दीरघ रोगिनि,
 आँखिन ते अँसुवा नहिं सूखत एकई बार है बैठा बियोगिनि ।
 जुग जोगिनि = पूरे युग से जैसे योगिनी । दीरघ रोगिनि = बड़े
 रोगवाली । धौं = या (यह एक अव्यय है, जो ऐसे प्रश्नों के पहले
 लगाया जाता है, जिनमें जिज्ञासा का भाव कम और संशय का अधिक
 होता है) । एकई बार = एकबारगी ।

* इधर तो मान द्वारा उत्पात किए, फिर उधर उसी मान के लिये
 पत्ते का जूझा क्यों बनाया, अर्थात् मान को डुबो क्यों दिया ?

वेई ससि - सूरज उवत निसि - दौस, वही
 नखत - समूह फलकत नभ न्यारो सो ;
 वेई देव दीपक समीप करि देखे, वही
 दून्यौ करि देख्यो चैत पून्यौ को उज्यारो-सो ।
 वेई बन - बागन बिलोकै सीस - महल,
 कनक मनि मोती कछू लागत न प्यारो सो ;
 वाही चंदमुखी की बा मंद मुसुकानि त्रिन
 जानि परो सब जग अधिक अँध्यारो-सो ॥ १६२ ॥

वेई = वही । उवत = उदय होते हैं । दून्यौ करि देख्यो = दुगना देखा, अर्थात् बहुत देखा ।

घोर लगै घर बाहिरहू डर नूत न नूत दवागि जरे-से ,
 रंगित भीतिन भीति लगै लाख रंगमही रनरंग ढरे-से॥
 धूम घटागर धूपन को निकसै नवजालन ब्याल भरे-से† ,
 जे गिरि-कंदर-से मनि-मंदिर आज अहा उजरे-उजरे-से॥१६३॥

घोर डर = अतिशय भय । रंगमही = विलास-स्थान । धूम घटा-
 गर = अगर के धूम का समूह । अगर की लकड़ी जलाने से सुगंधि देती
 है । नूत न नूत = जो नए नहीं (अर्थात् पुराने) हैं, और जो नए हैं, वे
 दोनो दावानल से जले हुए दिखाई देते हैं । नूत आम को भी कहते हैं ।

॥ रंगी हुई दीवारों को देखकर डर लगता है, तथा विहार-स्थल
 देखकर (ऐसा भान होता है कि ये) ढाले हुए (पूरे) युद्धस्थल हैं ।

† धूपों (सुगंधित धूमवाली धूप) तथा अगर के धूम की
 घटाओं का समूह नहीं निकलता है, वरन् उसमें नवीन सर्प-मे भरे
 हुए हैं । ब्यालों में नवीनता यह है कि वे आग से निकलते हैं ।

‡ उ (वे) जलकर उजड़-से गए हैं ।

पून्योॐ प्रकास उदो उकसाइकै आसहू पास बसाइ अमावसा,
 दै गए चित्त मैं सोच-बिचार, सु लै गए नींद छुधा बल बाबस;
 है‡ उत देव बसंत सदा इत है§ उत है हिय-कंप महा बस,
 दै॥सिसिरो निसि ग्रीष्मके दिन आँखिन राखि गएरितुपावसX।

नायिका की विरह-दशा के अंतर्गत षट् ऋतुओं का वर्णन है।
 उदो = उदय को। बाबस = बलात्कार से। अथवा वहाँ रहते हुए।
 है उत है = हेमन्त-ऋतु है।

ना यहु नंद को मंदिर है वृषभान को भौन कहा जकती हौ,
 हौंहीं कि ह्याँ तुमहीं कबि देवजू काहि धौँ घूँ घट कै तकती हौ;
 भेटती मोहिं भटू किहि कारन कोन की धौँ छवि सों छकती हौ,
 कैसी भई हौ कहौ किन कैमेहूकान्ह कहाँ हैं कहावकती हौ॥१८५॥
 जकती हौ = भौचकी होती हौ।

ॐ शारदीय चंद्र तथा नायिका के मुख से अभिप्राय है ; यहाँ शरद्
 ऋतु का निर्देश है।

† नायिका के केश-कलाप से अभिप्राय है, जो विरह-वश खुले
 हुए हैं।

‡ जहाँ नायक है, वहीं वसन्त-ऋतु है, तथा वहीं पर सब आनंद
 की सामग्री है, एवं यहाँ हेमन्त है।

§ नायिका का विरह में हृदय काँपने से हेमन्त-ऋतु का अभि-
 प्राय है।

॥ नायक के विरह में नायिका के लिये रात्रि शिशिर-ऋतु की रात्रि
 के समान बड़ी है, तथा दिन ग्रीष्म-ऋतु के दिन के समान बड़े हैं।
 इस चरण में शिशिर तथा ग्रीष्म-ऋतुओं का निर्देश है।

X नेत्रों से अश्रु-धारा का बहना मानो पावस-ऋतु है।

देखे दुख देत चेत॥ चंद्रिका† अचेत करि,
 चैन न परत चंद चंदन को टारि दै ;
 छीजन लगी है छबि, बीजन‡ करै न बीर,
 नीजन\$ सुदात है सखीजन निवारि दै ।
 सोए सजि सेजन करेजन मैं सूल उठै,
 जारि दै उसीर॥ कुटी, रावटी उजारि दै ;
 फूँकै ज्यों फनी + री फूल-माल को न नीरी करि,
 एबीरी बरी ऐ जाति या बीरी बगारि दै ॥१६६॥
 एबीरी = ओ री, एरी । बगारि दै = फेक दे । रावटी = छोटा खेमा
 या बँगला ।

केलि के बगीचे लौं अकेली अकुलाय आई,
 नागरि नबेली बेली हेरत हहरि परी ;
 कुंज-पुंज तीर तहँ गुंजत भँवर-भीर,
 सुखद समीर सीरे नीर की नहरि परी ।

देव तेहि काल गूँधि ल्याई माल मालिनि, सो
 देखत बिरह-बिष-ब्याल को लहरि परी ;

छोह-भरी छरी-सी छबीली छिति माहि फूल-

छरी के छुअत फूल-छरी-सी छहरि परी ॥ १६७ ॥

॥ चैत ।

† चाँदनी ।

‡ पंखा ।

\$ निर्जन ।

॥ खस ।

+ सर्प ।

हहरि परी = दुःखित हो गई । नहरि परी = नहर उसके सामने बड़ी । विरह-विष-व्याल की लहरि परी = मानो विरह-रूपी विषैले सर्प-दंश से मूर्च्छित हुई है । छोह-भरी = प्रेम-भरी । फूल-छरी = फूलों की छड़ी । छहरि परी = हाथ -पाँव फैलाए हुए गिर पड़ी ।

सूखे ही सिखाई कै सखीन समुझाई होती,
 देव स्यामसुंदर के सौहे॥ समुहाती क्यों ;
 बिचरि बिचारे बीच बैरी होते बंधु कत,
 विरह की बेदन बिकल बिलखाती क्यों ।
 जगमगी जोन्ह ज्वाल-जालनि सों जारती क्यों,
 जमजाई† जामिनी जुगंत-सम जाती क्यों ;
 कवैलहाई कवैलिया की काल - ऐसी कूकै सुने,
 कौल की-सी कलिका कुँ अरि कुँ भिलाती क्यों ॥१६८
 जमजाई जामिनी = काल-रात्रि । जुगंत = युगंत । कवैलहाई =
 कोयला-सी काली । कवैलिया = कोयल । कौल (कौल) = कमल ।
 बालम विरह जिन जान्यौ न जनम-भरि,
 बरि-बरि उठै ज्यों-ज्यों बरस बरफ राति ;
 बीजन डुलावति सखीजन त्यों सीत हूँ मैं,
 सौति के सराप तन तारपनि तरफराति ।
 देव कहै सासनि ही अँसुवा सुखात, मुख
 निकसै न बात ऐसी ससकी सरफराति ;

॥ सामने उपस्थित क्यों होती ।

† मृत्यु ।

लौटि-लौटि परति करौं ट खट-पाटी लै-लै,

सूखे जल सफरी-ज्यों सेज पै फरफराति॥१६६॥

बरफ = ठंडी ओस । सराप (शाप) = दुर्वचन । ससकी =
श्वासोच्छ्वास । सफरी — मछली ।

जागा न जोन्हाई लागो आगि है मनोभव की,

लोरु तीनो दियो देरि-देरि हहरत है ;

बारि पर परे जलजात जरि बरि-बरि,

बारिधि ते बाड़व - अनल पसरत है ।

धरनि ते लाइ भरि छूटी नभ जाइ, कहै

देव जाहि जोवत जगत हू जरत है;

तारे चिनगारे - ऐसे चमकत चहूँ ओर,

बैरी बिधु - मंडल भभूको-सो बरत है॥२००॥

बाड़व-अनल (बाड़वानल) = समुद्र की आग । चाँदनी नहीं
छिटकी है, वरन् कामदेव की आग लगी है, (जिसके कारण से)
तीनो लोकों को देख-देखकर हृदय घबराता है । तालाब के कमल
विरहानल से जलकर पानी पर गिर पड़े (अर्थात् पानी में रहने पर
भी वह उन्हें बचा न सका, क्योंकि स्वयं तप्त हो गया), अथच जल-
जलकर समुद्र से बाड़वानल आगे फैलता है (अर्थात् समुद्र में
नहीं समाता) । पृथ्वी से लाइ भरि (अग्नि की झर) जाकर
आकाश में छूटी, जिसे देखते ही सारा संसार भी जल रहा है ।;
साँसन ही सों समीर गया अरु आँसुन ही सब नीर गया ढरि,
क्षतेजु गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तनु की तनुता करि ;

॥ अग्नि अपने गुण (नेत्रों से रूपों की प्रण-शक्ति) को लेकर
चली गई ।

देव जियै मिलिबे ही कि आस कि आसहू पास अकासरह्यो भरि,
जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जु लियो हरि जूहरि ॥

कवि इस छंद में (विरह के वश) पंचतत्त्व - निर्मित शरीर का
विनाश वर्णन करता है ।

समीर = वायु; यहाँ प्राण-वायु से प्रयोजन है । तेजु = अग्नि ।
तनुता = कृशता ।

वे बतियाँ छतियाँ लहकैं दहकैं विरहागिनि की उर आँचैं ,
वा बसुरी को पर'यो रसु री इन कानन मोहन मंत्र-से माँचैं ;
कौ लगी ध्यान धरे मुनि लौ रहिए कहिए गुन बेद से बाँचैं ,
सूक्त ना सखि आन कछू निमि-दौस बई अखियान मैं नाँचैं ॥

लहकैं = जलें । माँचैं = छा जावैं, मचैं ।

इभ - से भरत, चहुँघाई सों धिरत । घन,

आवत भरत भीने भरसों भूपकि - भूपकि ;

सोरन मचावैं नचैं मोरन की पाँति चहुँ -

ओरन ते कौंधि जानि चपला लपकि - लपकि ।

बिन प्राणप्यारेॐ प्राण न्यारे होत, देव कहै

नैन बरुनीन रहे अँसुवा टपकि-टपकि ;

रतिया अँधेरी, धीर न तिया धरति, मुख

बतिया कदैं न, उठैं छतिया तपकि-तपकि ॥ २०३ ॥

इभ-से = हाथी-समान । चहुँघाई = चारो तरफ़ से । भरत = गिरना,
भिरना । भीने = पतले । भरसों = छोटी बिंदुओं की वर्षा करते हुए ।
कौंधि = चमक जाना । भूपकि-भूपकि = धिर-धिरकर ।

ॐ प्राण ही दूसरे हो जाते हैं ।

आँसुन के सलिल सिरावती न छाती जो,
 उसास लागि कामागि भसम हो तो हीततो ;
 फेसरि कुसुम हू ते कौरी जो न होती, तौ
 किमोरी सों कुसुम-सर कौनी भाँति जीततो ।
 देवजू सराहिए हमारो न्याउ ह्याऊ करि,
 नाहित अहित चेत करतो जु चीततो ;
 कोकिला के ढेरत निकरि जातो जीव, जो
 तिहारे गुन गनत उधेरत न बीततो ॥२०४॥

सखी नायक को नायिका की विरह-दशा सुनाती है ।

उसास = दीर्घ श्वास । कामागि = कामाग्नि । कुसुम-सर = फूल
 के बाणवाला अर्थात् कामदेव । ह्याऊ = धैर्य । न्याउ = न्योय ।
 चेत = चैत । चीततो = जो चिंतता । गुन गनत उधेरत = गुण गिनना
 और बिखेरना, अर्थात् स्मरण करना । उधेरना का शाब्दिक अर्थ उके-
 लना है । कौरी = साफ़ ।

कंत बिन बासर बसंत लागे अंतक - से,
 तीर - ऐसे त्रिविध समीर लागे लहकन ;
 सान - धरे सार - से चंदन घनसार लागे,
 खेद लागे खरे॥ मृगमेद लागे महकन ।
 फाँसी - से फुल्लेला लागे गाँसी - से गुलाब अरु
 गाज अरगजा लागे, चोवा लागे चहकन ;

* चंदन घनसार (कपूर) सान-धरे लोहे-से लूगे, तथा मृगमेद
 के महकने से खरे खेद लगे (विशेष संताप हुआ) ।

अंग - अंग आगि - ऐसे केसरि के नीर लागे,

चोर लागे जरन अवीर लागे दहकन ॥२०५॥

अंतक = यमराज । सान-धरे सार = सान पर चढ़ा हुआ (तेज़किया हुआ) लोहा । घनसार = कपूर । मृगमेद = कस्तूरी (मृगमद) । गॉसी = शस्त्रों के आगे का भाग । चहकन = लूका लगना । अरगजा = एक सुगंधित द्रव्य, जो केशर, चंदन, कपूर आदि को मिलाकर बनाया जाता है । चोवा = एक सुगंधित द्रव्य, जो कई सुगंधित वस्तुओं को मिलाकर, उसको जोश देकर रस टपकाने से बनता है । विशेषतया चंदन का बुरादा, देवदार का बुरादा, मरसे के फूल, केशर और कस्तूरी इसके बनाने में पड़ते हैं ।

खोरि लौं खेलन आवती यै न तो आलिन के मत मैं परती क्यों,
दव गुपालहि देखती यै न तौ या बिरहानल में बरती क्यों ;
माधुरी मंजुल अंब की बालि सुभालि-सी है उर मैं अरती क्यों ,
कोमल कूकि कै कोकिल कूर करेजनि की किरचैं करती क्यों ।

बरती = जलती । भालि-सी = बरछी की-सी । अरती = गड़ती ।
किरचैं = टुकड़े ।

(२३)

खंडिता

देव जुपै चित चाहिए नाह तौ नेह निबाहिए देह मरयो परै,
त्योँ समुझाय सुभाइए राह अमारग जो पग धोखे धरयो परै;
नीके मैं फीके है आँसू भरौ कत ऊँची उसास मरो क्यों भरयो परै,
रावरो रूप पियो अँखियान भरयो सुभयो उबरयो सुढरयो परै ।

खंडिता नायिका नायक से कहती है—

नायिका—यदि चित्त में पति की कामना हो, तो शरीर चाहे मर भी जाय, किंतु स्नेह निभाना चाहिए। जी यदि धोखे में भी बुरी राह पर पैर धरे, तो उसे समझाकर राह दिखलाना चाहिए।

नायक—अच्छी दशा में मन में फीकापन लाकर आँसू क्यों भरती हो, और ऊँची उसास से तुम्हारा गला क्यों भर-भर आता है ?

नायिका—आप ही का रूप इन आँखों ने पान किया है। वह भरा है, सो भरा ही है, किंतु जो भरने से भी बचता है, वह ढरका पड़ता है। तात्पर्य यह है कि नायक अन्य स्त्री-रत है, जिससे व्यंग्य द्वारा नायिका कहती है कि उसका रूप नायिका के नेत्रों में इतना भरा है कि समाता तक नहीं है। जो रोने में आँसू गिरते हैं, वे मानो आँसू नहीं हैं, वरन् नायक का रूप है, जो नेत्रों में न समाकर बाहर ढरका पड़ता है। दोनों आदिम पदों में भी नायिका प्रकट में नायक से कोई शिकायत नहीं करती, वरन् यह दिखलाती है कि उसके कुमार्ग-रत होने के कारण जो नायिका का मन विचलित होता है, सो नायक का दोष न होकर उसी के मन का दोष है, और उसी मन को समझाना चाहिए।

हित की हितू री, नहि तूरी समुझावै आनि,
 सुख दुख मुख सुखदानि को निहारनो;
 लपने ❀ कहाँ लौ बालपने की बिकल बातें,
 अपने जनहि सपनेहू न बिसारनो।

❀ मुख का व्यवहार करना, लपन = मुख।

देवजू दरम बिनु तरसि मरयो हो, पग
परसि जियेगो मन-बैरी अनमारनो;
पतिव्रतवती ए उगसी प्यासी अँखियन
प्रात उठि पीतम पिआयो रूप-पारना॥२०८॥

स्वकीया खंडिता नायिका का कथन सखी प्रति है ।

पग परसि = पैरों को छू करके । अनमारनो = न मारा जानेवाला, अर्थात् वश में न रहनेवाला । पारनो = पारण = किसी व्रत या उपवास, के दूसरे दिन किया जानेवाला पहला भोजन और तत्संबंधी कृत्य । आए हौ पैन्हि प्रभात दिए पर जानि परै कछु ज्योति उज्यारी, आरसी ल किन देखिए देवजूपाई कहाँ केहि नेह निहारी ; कै बनमाल किधौँ मुक्तावलि कंवन की कि रचो रतनारो†, स्याम कहूँ, कहूँ पीत कहूँ सित लाल कहूँ उर-माल निहारी ‡ ।

नायक ने अन्य रमणी के साथ रमण किया, ऐसा जानकर नायिका नायक पर इस विषय पर आक्षेप करती है । नायक के हृदय पर अन्य रमणी के मुक्तावली के चिह्न उपड़े हुए होने से प्रौढ़ नायिका व्यंग्य द्वारा नायक पर दोष लगाती है ।

पैन्हि = पहन । नेह निहारी = स्नेह से देखा है ।

॥ पीतम प्रात उठि पतिव्रतवती इन उपासी प्यासी अँखियन (आँखों को) रूप-पारनो पिआओ । प्रयोजन यह है कि नायक ने प्रातःकाल आकर नायिका को दर्शन दिया ।

† या यह माल लाल सोने की बनी है । यह भी कहा जा सकता है कि रत्न और सोने से माल रची है ।

‡ कस्तुरी के म्रंसर्ग से काली, केशर से पीली तथा चंदन से शुभ्र अथवा लाल है ।

आजु गोगलजू बाल-बधू सँग नूतन-नूतन कुंज बसे निसि,
जागर होत उजागर नैनन पाग पै पीरो पराग पगी पिसि;
चोज के चंदन खोज खुले जहँ ओछे उरोज रहे उर मैं घिसि,
बोलत बात लजात-से जात हैं, आए इतौत चितौत चहूँ दिसि।

जागर = जागरण । उजागर = प्रकट (उजियाले के समान प्रकट) ।
चोज = थोड़ा (चमत्कार-पूर्ण उक्ति, जिससे लोगों का मनोविनोद
हो । यहाँ चोज शब्द का अर्थ 'थोड़ा' होता है । शब्द-पारिजात-
कोष में इस शब्द का अर्थ 'थोड़ा' लिखा भी है) । इतौत = इत,
उत (इधर-उधर) करते हुए ।

(२४)

उपालंभ

मंजुत मंजरा पंजरी-सी ह्वे मनोज के ओज सम्हारति चीरन,
भूख न प्यास न नींद परै परी प्रेम अजीरन के जुर जीरन ;
देव घरो-पल जात घुरी अँसुवान के नीरउसास-समीरन ,
आहन जाति अहीरअहे तुम्हैं कान्ह कहा कहाँ काहू कि पीर न ।

दूती नायक (श्रीकृष्ण) के विषय में उपालंभ प्रकट करती हुई
नायिका की वियोग-दशा का वर्णन करती है ।

पंजरी = पिंजड़ा । आहन = लोहा ।

पूतना को पय पान करो मनु पून-नाते बिसवास वगाहत॥
देव कहा कहाँ मातु-पिता-हित-बंधुन सों हित नीके निबाहत;

॥मानो पुत्र होने के नाते से उसके शरीर में विष के निवास-
स्थान को खोजते हैं । सव्यंग्य कथन है ।

कारेः॥हौ कान्ह निकारेहौ कीलिरहेगुनलीलि पै औगुन थाहत,
पन्नगा कीमनि कीन्हे तुम्हैं, तुमपन्नगकी किचुली कियो चाहत‡।

पूत-नाते=पुत्र के नाते से । वगाहत=पैठ करके । कीलि (कील-
कर)=वह मंत्र, जिससे सर्प वश किया जाय । पै औगुन थाहत=
किंतु अवगुणों की थाह लेते हो ।

माही मैं छिपे हौ मोंहिछ्वावत न छाँहौ, तापै
छाँह भए डोलत इते पै मोंहि छरिहौ ;
मच्छ सुनि कच्छप बराह नरसिंह सुनि,
बावन परसुराम रावन के अरि हौ ।
देव बलदेव देव दानव न पावैं भेव,
को हौ जू कहौ जू जो हिये की पीर हरिहौ ;
कहत पुकारे प्रभु करुना - निधान कान्ह,
कान मूँदि बौध है कलंकी काह करिहौ ॥ २१३ ॥

॥ हे कान्ह, तुम काले सर्प हो, और मंत्र द्वारा कीलकर (पर-वश
होकर) निकाले गए हो, और गुण लील चुके हो, किंतु अवगुण की
थाह लेते हो, अर्थात् बुरी बातों की सीमा तक पहुँचते हो । प्रयोजन
यह है कि नायिका ने उन्हें सर्प के समान कीलकर अपने प्रयोजन से
स्ववश किया, किंतु वह उसके वश में नहीं होते ।

† सर्प ।

‡ हम तो तुम्हें सर्प की मणि के समान सिर पर धारण किए रहे
हैं, अर्थात् तुम्हारा अत्यंत सम्मान करते रहे हैं, किंतु तुम हम लोगों
को सर्प की केंचुल की तरह समझते हो, अर्थात् हमको तुच्छ समझ
करके छोड़ते हो ।

रत्नावली-अलंकार है ।

नायिका नायक (भगवान्) के विषय में प्रत्यक्ष उपालंभ प्रकट करती है । कवि ने भगवान् के दसो अवतारों का वर्णन इस छंद में किया है ।

रावरे पाँयन ओट लसै पग गूजरी बार महावर ढारे ,
सारी असावरी की झलकै छलकै छबि घाँघरे घूम घुमारे ;
आओ जू आओ दुगावो न मोहूँ सों देवजू चंद दुरै न अँध्यारे,
देखौ हौ कोन-सो छैल छिगई तिरीछे हँसै वह पीछे तिहारे ।

नायिका नायक को अन्य रमणी से संबंध रखने का दोष लगाती हुई उसके विषय में उपालंभ प्रकट करती है । नायक के पीछे वास्तव में कोई स्त्री है नहीं, केवल उसे चौधियाने को ऐसा कथन है ।

ओट = आड़ । वह = अन्य रमणी से अभिप्राय है ।

मोहि तुम्हें अंतरु गनै न गुरजन, तुम
मेरे, हौं तुम्हारी पै तऊ न पिघलत हौ ;
पूरि रहे या तन मैं, मन मैं न आवत हौ,
पंच पूँछि देखे कहूँ काहू ना हिलत हौ ।
ऊँचे चढ़ि रोई, कोई देत न दिखाई देव,
गातनि की ओट बैठे बातन गिलत हौ ;
ऐसे निरमोही सदा मोही मैं बसत, अरु
मोही ते निकरि फेरि मोही न मिलत हौ ॥ २१५ ॥

पंच = (१) लोग-बाग ; (२) पंच ज्ञानेंद्रियाँ । गिलत हौ = पी जाते हो, अर्थात् प्रकट नहीं होने देते । ही = हृदय ।

केतकी के हेत कीन्हे कौतुक कितेक तुम,
 पैठि परिमल मैं गए हौ गड़ि गात ही ;
 मिले मल्लि-बल्लिन लवंग-संग हिले, दुरि
 दाड़िमनि पिले पुनि पाँड़र की घात ही ।
 कीन्ही रस-केजी माँझ चूमत चमेली बाँझ,
 देव सेवतीन माँझ भूले भहरात ही ;
 गोद लै कुमोदिनि बिनोद मान्यो चहूँ कोद,
 छपद छिपेहौ पदुमिनि में प्रभात ही ॥ २१८ ॥

नायक बहुतों से प्रेम करता है, इसका उपालंभ है। फूलों का वर्णन है। कितेक = कितने ही (बहुत-से)। परिमल = मकरंद। गात ही = शरीर-सहित (केवल मन ही से नहीं)। पिले = घुसे। भहरत ही = जोर से गिरते हुए। कोद = तरफ़। छपद = षट्पद (भौरा)। सेवतीन = जंगली गुलाबों। मल्लि = बेला। बल्लिन = लताओं में। दुरि दाड़िमनि पिले = छिपकर अनारों में घुसे। छिपकर कहने का यह प्रयोजन है कि दाड़िम के तोड़ने में अधिक समय लगता है, सो एकांत में छिपकर उसे तोड़ा, जिसमें कोई दूसरा आकर साभी न हो जाय। जिस काल इतना परिश्रम करके दाड़िमों में घुसे थे, तब उसमें विराम करना था, किंतु ऐसा न करके भ्रमर ने फिर पाँड़र (एक प्रकार की चमेली) में भी घात लगा रखी थी। चमेली बाँझ इसलिये कही गई है कि उसमें फल नहीं होते।

लागी प्रेम-डोरि खोरि साँकरी हूँ कढ़ी आनि,
 नेह सों निहोरि जोरि आली मन मानती ;
 उतते उताँल देव आए नँदलाल, इत

• सोहैं भई बाल नव लाल सुख सानती ।

कान्ह कह्यो टेरिकै कहाँ ते आई, को हौ तुम,
 लागती हमारे जान कोई पहिचानती ;
 प्यारी कह्यो फेरि मुख हेरिजू चलेई जाहु,
 हमैं तुम जानत, तुम्हैं हूँ हम जानती ॥२१॥

खोरि = गली । साँकरी = तंग । निहोरि = नम्रता-पूर्वक ।
 सोहैं = सामने ।

नातो कहा तुमसों तुम कोहौ जू कान्ह छवौ कछु अंग न वाको,
 क्यों छवैं अंग पै देखत हैं जु जराऊ तरौना॥ मैं रूप रवा को;
 कौने कह्यो हो बिजायँठोबाँधनयोंगिरिजातो जुँ डोरु ऋवाको†,
 लाल परे लड़ बावरी बात‡ हौं ठेंग गनोंगी न नंद बबा को ।

जराऊ = जड़ाऊ । रवा = रत्न का टुकड़ा । बिजायँठो = बजुल्ला
 (भूषण) । ऋवा (ऋवा) = एक ही में बँधे हुए रेशम या सूत

इस छंद में कवि सखी और नायक के परस्पर संवाद का वर्णन
 करता है । सखी का भाषण उपालंभ-सहित है ।

॥ कान में पहनने का आभूषण, जो फूल के आकार का गोल
 होता है । कर्णफूल; कनफूल ।

† इस प्रकार से बजुल्ला बाँधने को किसने कहा था, यदि
 ऋवा का डोर गिर जाता, तो कैसी होती ?

‡ लंगरपन की बात में पड़े हो, मैं नंद बाबा को ठेंग न गिनींगी ।
 ठेंग का प्रयोजन निरादर-सूचक अपमान से है ।

पहले तथा चौथे चरण में सखी के वाक्य हैं, और शेष दोनों में
 भगवान् के ।

आदि के बहुत-से तारों का गुच्छा, जो कपड़ों या गहनों आदि में शोभा बढ़ाने के लिये लटकया जाता है ।

केसरि सों उबटे सब अंग, बड़े मुकुतान सों माँग सँवारी ,
चारु सुचंपक हार गरे, अरु ओछे उरोजन की छवि न्यारी ;
हाथसों हाथ गहे कवि देवजू साथ तिहारे हों आजु निहारी ,
हाहा हमारी सों साँचो कहौ वह कौन ही छोदरी छाबरवारी ॥

नायिका नायक को अन्य रमणी के साथ देखकर आक्षेप करती है ।
छीबर = एक प्रकार की चूनरी ।

कालिह ही साँझ उड़यो कर माँझ ते देव खरो तबते उर साल्यो,
एक भली भई बाग तिहारे ही श्रीफल औ' कदली चढ़ि हाल्यो;
बंचकबिंबनि चंचु चुभावत कुंज के पिंजर में गहि घाल्यो,
हों सुकहूँ नहिं राखि सकी सुकहूँ सुन्यो तैंहीं परोसिनि पाल्यो ।

नायिका नायक के विषय में शिकायत करते हुए कहती है कि परोसिन ने नायक को शुक की तरह पाल लिया है, अर्थात् अपने वश में कर लिया है ।

श्रीफल = बिल्वफल, बेल, नारियल । बिंबनि = कुँदरू - फल ।
घाल्यो = डाल दिया । चंचु = चोंच । सुकहूँ = शुक (तोता) को भी ।
राधे कही है कि ते छमियो ब्रजनाथ जिते अपराध किए मैं ,
कानन तान न भूलत ना खिन आँखिन रूप अनूप पिए मैं ;
ओछे हिये अपने दिन-राति दयानिधि देव बसाय लिए मैं ,
हौंही असाधु बसी न कहूँ पल आधु अगाधु तिहारे दिए मैं ॥२२१॥

तान = श्रुतापना । खिन = क्षण । असाधु = असाध्वी; बुरी ।

मान

झोंठन ते उठि पीठि पै बैठि कंधान पै ऐंठि मुर-यो मुख मोरनि ,
 देव कटाच्छन ते कढ़ि कोप लिलार चढ़यो बढ़ि भौंह मरोरनि;
 अंक में आए मयंकमुखी लई लाल को बंक चितै दृग-कोरनि ,
 आँसुन बूड़योउसासउड़यो किधौ मान गयो हिलकी की हिलोरनि ।
 लघु मान का वर्णन है ।

मयंकमुखी = चंद्रमुखी । हिलकी की हिलोरनि = रुदनभव
 हिचकी की लहरों में ।

सखी के सकोच गुरु सोच मृगलोचनि

रिसानी पिय सों जु नेकु उन हँसि छुयो गात;

देव वै सुभाय मुसुक्याय उाँठ गए यहि

सिसिकि-सिसिकि निसि खोई रोय पायो प्रात।

कौन जानै बीर बिन बिरही बिरह-बिथा,

हाय-हाय करि पाछिताय न कछू सोहात ;

बड़े-बड़े नैननि ते आँसू भरि-भरि ढरि

गोरो-गोरो मुख आजु ओरो सो बिलानो जात ॥२२३

कलांतरिता नायिका का वर्णन है ।

बिलानो जात = नष्ट हुआ जाता है ।

इस छंद की व्याख्या 'मिश्रबंधु-विनोद' की भूमिका में है ।

यारी हमारी सौं आबौ इतै कवि देव कुप्यारी हैं कैसेक ऐए,
 यारी कहो मति मोसों अहो काह प्यारी प्योप्यार की प्यारी बुलैए;

कै वह प्यारु कै एतो कुप्यारु औ' न्यारी है बैठि कै बात बनैए,
प्यारे पराए सों कौन परेखो॥ गरे परि कौलगि प्यारी कहैए ।

मानिनी परकीया नायिका का वर्णन है । कौलगि = कब तब ।

(२६)

सखी की शिक्षा

गौने कि चाल चली दुलही गुरु नारिन भूषन भेष बनाए,
सील सयान सबै सिखएरु सबै सुख मासुरेहू के सुनाए;
बोलियो बोल सदा अति कोमल जे मनभावन के मन भाए,
यों सुनि ओछे उरोजनि पै अनुराग के अंकुर-से उठि आए ।
इंद्र ज्यों राज कुबेर ज्यों संपति त्यों दग दोषति लाज धरे री,
बालक बान दै वीरध पान दै अंजन सान दै क्यों निदरे री;
गोकुल में कुल तो कुल पै कहँ उज्जल तो-से सुभाय भरे री,
इंदु में आगि पियूष में ज्यों विष देव त्यों तो मुखवातकरे री ।

तेरा इंद्र का-सा राज्य एवं कुबेर का-सा धन-समूह है, तथा तेरे नेत्र लाज की प्रभा धारण किए हुए हैं, किंतु तू उन पर अंजन-रूपी सान (बाढ़ि) धरकर क्यों उनका निरादर करती है । तेरा यह कर्म ऐसा है, जैसे वृद्ध का पान खाना (शृंगार करना), या बालकों को तीर देना । गोकुल में तो कुल (बहुत-से) कुल (वंश) हैं, किंतु तेरे समान उजले सुभाव से भरे हुए व्यक्ति कहाँ हैं ? ऐसी गुण-युक्ता जो तू है, उसके मुख से कड़ी बात का निकलना ऐसा ही है, जैसे चंद्रमा में अग्नि या अमृत में विष ।

केती न नागरि नौल-बधू तुम ही गुन-आगरि आई न गौने ,
 देव सकोचनि सोचति क्यों मृग-लोचनि लोचनिहै ललचौने॥
 पी को पियूष सखी सुर-रूख ते दूखत सूखत या मुख मौने
 मान के मंदर रूप-समुंदर इंदु ते सुंदर सील सलौने † ।

नौल = नवल = नवीन ।

बैठी कहा धरि मौन भट्ट रँगभौन तुम्हें बिन लागत सूनौ ,
 चातक लौं तुमहीं ररि देव चकोर भयो चिनगी करि चूनौ ;
 साँझ सुहाग की साँझ उदौ करि सौति सरोजन को बन लूनौ,
 पावस‡ ते उठि कीजिए चेत अमावस से उठि कीजिए पूनौ ॥
 दूती नायिका को शिक्षा देती है ।

चूनौ = चुगाकर ।

॥ हे मृगनयनी ! तू ललचवाने के योग्य नेत्रवाली होकरभी
 संकोचों से क्यों सोचती है ?

† हे सखी, इंदु ते सुंदर, रूप-समुंदर, सील सलौने, सुर-रूख पी
 को पियूष (अमृत-सा प्रेम) मान के मंदर या मुख मौने ते सूखत
 (अथच) दूखत । प्रयोजन यह है कि अल्पवृक्ष के समान एवं रूप
 के समुद्र पति का भी प्रेम तेरे मंदराचल-समान भारी गानभव मौन
 से सूखता एवं दूषित होता है । सखी मान-मोचनार्थ शिक्षा देती है ।

‡ पावस' से नायक के रोने से तथा 'चेत' से उसके प्रफुल्लित
 होने से अभिप्राय है ।

सखी नायिका को नायक के पास जाने के लिये उद्युजित करती
 है, और उसका परिणाम यह दिखाती है कि नायक तुम्हारे विरह में
 जो अश्रु-धारा गिरा रहा है, उसे प्रफुल्लित करो, और अपने मुख-चंद्र
 से वहाँ के अँधेरे को मिटाकर प्रकाशमय करो ।

नेह लगाय निहोरे करावत नाहक नाह कहावत जैसे ,
साथ के सेंकत हाथ जरे घर कौन बुझावै मिले सब तेसे;
वाहि न घूँघट की घट की सुधि अंग अनंग जरै पजरै-से,
क्यों नग है करतू तिनके जिनकी करतूतिन के फल ऐसे ॥२२६॥

सखी नायक के विषय में उपालंभ प्रकट करती हुई स्वकीया नायिका को शिक्षा देती है । निहोरे = विनय । घट की = शरीर की । पजरै = झरना ।

रावरे रूप लला ललचानी ये जानी न काहू बिकानि औ' ऐसी,
हैं सत-हीन सताई ततौ तुम संगति ते उतगी उत तैसी ;
न्याव निवेरो न हो यह नेह को जानत हौ तुमहूँ हम जैसी ,
देखिबेहीकोभरौसिसकी तिनतेरिसकी चमचाकहौ कैसी ॥२२७॥

पहले दो पद नायक से कहे गए हैं, और अंतिम दो नायिका से । हे लला ! ये तुम्हारे रूप से ललचाकर ऐसी बिकी हैं कि कोई यह भेद भी नहीं जानता । जो तुमने इधर सताया (प्रेम की कमी से),

ॐ तू (नायिका) तिनके (नायक के) कर (हाथ) क्यों न गहै (क्यों नहीं पकड़ती), जिनकी करतूतिन के (जिनके कर्मों के) फल ऐसे हैं ।

तू स्वामी से प्रेम लगा इस प्रकार विनती कराती है, मानो उनका तुझ पर कोई अधिकार ही नहीं, अथच वह तेरे स्वामी निष्कारण कहलाते हैं । तेरे साथ के लोग ऐसे हैं, मानो घर जलने पर बुझाने के स्थान पर तापते हैं । तेरे पति को तेरे घूँघट तथा अपने शरीर की भी याद नहीं है, और कामदेव से उसके अंग झरने के समान जल रहे हैं (प्रयोजन यह है कि आग ऐसी प्रचंड है कि झरना तक जल रहा है) । अश्रु-बाहुल्य से झरने का कथन और भी उचित है ।

उससे सत-हीन (सार-पदार्थ से रहित अर्थात् दुबली) हैं, और उधर स्वजनों के साथ से भी उतर गई हैं । हे सखी ! यह स्नेह (मान) के निबटाने का न्याय नहीं है, तुम जानती हो कि मैं जैसी (बड़ी उचित वक्ता) हूँ । जिसके देखने-भर के लिये रोया करती हो, उससे क्रोध की बात ही क्या है ?

बारिये बैस बड़ी चतुरै हौ बड़े गुन देव बड़ाए बनाई ,
सुंदरै हौ सुचरै हौ सलोनी हौ सील भरी-रस रूप सनाई ;
राजबहू बलि राजकुमारि अहो सुकुमारि न मानौ मनाई ,
नैसिक नाह के नेह बिना चकचूर है जैहै सबै चिकनाई॥२३१॥

अधमा सखी की कठिन शिष्टा मानिनी नायिका के प्रति है ।
नैसिक = थोड़ा (नैसर्गिक = शुद्ध स्वाभाविक) ।

(२७)

काव्यांग

चोंगी लगै चहुँओर चितौतु, कलंक लगै मग मैं पगु दै री ,
दंतनि दाबि रहौ अँगुरी, अँगुरी कहूँ नेकु जुपै उघरै री ;
देव दुरे रहिए हँसिए नहि बैरिनि बैस किए जग बैरी ,
जौ न घिरे रहिए घर मैं तौ घनेघिरि आवत हैं घर घेरी॥२३२॥
स्वभावोक्ति ।

चितौतु = चितवत (देखने से) । दैरी = एरी ! दए (देने से) ।
नेकु = थोड़ी । बैस = अवस्था (वयस) ; नवीन का अध्याहार है ।
घेरी = बदनामी करनेवाले ।

आई हौ देखि बधू इक देव सुदेखतै भूलो सबै सुधि मेरी ,
राख्यो न रूप कछू बिधि के घर ल्याई है लूटि लुनाई कि ढेरी ;

येबी अबै वहि ऐबे है बैस मरेंगी हराहरु घूटि घनेरी,
जे-जे गनी गुन-आगरि नागरि ह्वै हैं ते वाके चितौत ही चेरी।

दूती का वचन । ग्रामीण नायिका ।

येबी = एरी ! ऐबे है बैस = जवानी आनी है । लुनाई = लावण्य ।
ढेरी = समूह । घूटि = पीकर । घनेरी = बहुतेरी । गनी = गिनी हुई,
प्रख्यात । चितौत ही चेरी = देखते ही चेरी (दासी) हो जावेंगी ।
हराहरु = हलाहल, विष । यद्यपि वह गुण-आगरी नागरी नहीं है,
तो भी ऐसी नायिकाएँ उसके सहज रूप से चेरी हो जायँगी ।

कुंजनि के कोरे मन केलि रस बोरे लाल

तालन के खोरे बाल आवति है नित को ;

अमिय निचोरे कल बोलति निहोरे नेक

सखिन के डोरे देव डोलै जित-तित को ।

थोरे-थोरे जोबन बिथोरे देति रूप-रासि ,

गोरे मुख भोरे हँसि जोरे लेति हित को ;

तोरे लेति रति - दुति मोरे लेति गति-मति

छोरे लेति लोक-लाज चोरे लेति चित को ॥२१४॥

सखी नायक से नायिका का रूप वर्णन करती है ।

कोरे = किनारे अर्थात् निकट । बोरे = डुबाए डुए । खोरे = गल्ली।
बाल = षोडश वर्ष की बाल्यावस्था की स्त्री; नवयौवना । कल =
सुंदर । बिथोरे = फैलाती है, बिथराए देती है । तोरे = तोड़ती है,
अर्थात् छीनती है । डोरे = डोरियाए, सखियों के साथ ।

सखिन को सुख सुने सौतिन के महा दुख

होत गुरुजनन को गुन को गरूर है ;

देव कहै लाख-लाख भौंति अभिलाष पूरि
 पी के उर उमगत प्रेम-रस पूर है ।
 तेरो कल बोल कल भाषिनि ज्यों स्वाति-बुंद,
 जहाँ जाइ परै, तहाँ तैसोई समूर है ;
 ब्याल-मुख बिष ज्यों, पियूष ज्यों पपीहा-मुख ,
 सीपी-मुख मोती, कदली-मुख कपूर है ॥ २३५ ॥
 कवि नायिका के मधुर भाषण तथा उसके गुणों का वर्णन करता
 है । छंद में उल्लेख अलंकार का अच्छा उदाहरण है ।

समूर = मूल = आदिकारण ।

जब ते कुँअर कान्हू रावरी कलानिधान
 कान परी वाके कहूँ सुजस कहानी - सी ;
 तब ही ते देव देखी देवता-सी हँसति-सी,
 खीभति-सी रीभति-सी रूसति रिसानी-सी ।
 छोही-सी छली-सी छीनि लीनी-सी छकी-सी छीन,
 जकी-सी टकी-सी लगी थकी थहरानी-सी ;
 बीधी-सी बँधी-सी बिष-बूड़ी-सी बिमोहित-सी
 बैठी वह बकति बिलोकति बिकानी-सी ॥ २३६ ॥
 प्रेमोन्मत्ता नायिका के भावों का वर्णन है । खीभति = झुँझलाती ।
 छोही = अनुरागिनी । थहरानी = कंपित । टकी-सी = टकटकी-सी
 बाँधे है । समुच्चयालंकार है ।

उज्ज्वल उज्जारी-सी झलमलाति झीनी सारी,
 भाई'-सी दीपति देह - दीपति बिसाल-सी ;

जोवन की जोतिन सों, हीग लाल मोतिन सों
 नख ते सिखा लौं मिलि एकै है महा लसी ।
 बोननि हँसनि मंद चलनि चितौनि चारु-
 ताई चतुराई चित चोरिवे की चाल-सी;
 संग में सहेनी सोन-बेली-मी नबेली बाल
 रँगमगे अंग जगमगति मसाल-सी ॥ २३७ ॥

नायिका की कांति का वर्णन । बिसाल = बड़ी । महा लसी = बहुत शोभित हुई । नबेली = नवीन स्त्री । सोन-बेली = कनक-लता । झीनी = बारीक । झाड़ूँ = ज्योति-पूर्ण आभा । देह-दीपति = शरीर की कांति । रँगमगे = रँग (प्रेम) में मग्न; खूब रँगो हुए ।

नारिजु बारिज-सी विकस्री रहै प्रेमकसी गिक-सी कल कूजै,
 जा बड़ भाग के भौन बसी तेहि पीतम के चलिकै पग छूजै ;
 और कहा कहिए तेहि द्वार की दासी है देव उदास न हूजै,
 आँखिन को सुख सुंदरि को मुख देखत हू दिखसाध न पूजै ।

स्वकीया नायिका का वर्णन है ।

विकसी (विकसित) = प्रफुल्लित । कूजै = कोमल शब्द करती है । दिखसाध = देखने की महती इच्छा ।

बूझै बड़े बबा नंद को बंस जसोमति माय को मायको बूझत,
 बोलत बातें बड़ी बन में मन में वृषभानु बबा सों अरुझत ;
 देव दबीं हम नेह के नाते न तौ पुरिखा इन बातन जूझत,
 जीभ सँभारि न काढ़त गारि हौ ग्वारि गँवारि हमै हरि बूझत ।

कुलगर्विता नायिका का वर्णन है ।

मायको = नैहर । जूझत = लड़ते-झगड़ते । बूझत = समझते हो ।

चितै चैत-चंद्रिका महल चंद्रिका ते छिपि
 चली चंद्रमुखी जोर जोवन बनक ते ;
 गुपित गलीन लाख लाज भय लीन सुनि
 लाल परबीन कर बीन की भनक ते॥
 नूपुर अनूप सुर दाबत हथेली उर,
 आवत न जात बनै आहट तनक ते ;
 सासुन की सकुच उसासन गनति, छिति
 संकित तनत भौंह किंकिनि-भनक ते † ॥ २४० ॥

सुग्धा शुक्राभिसारिका नायिका का वर्णन है ।

आहट = आने-जाने का शब्द, जो चलने में पैर तथा दूसरे अंगों से होता है । उसासन गनति = श्वासों को गिनती है, अर्थात् श्वास के शब्द को भी छिपाती है कि कहीं कोई सुन न ले ।

❀ चैत्र की चाँदनी को देखकर अपने चाँदनीवाले महल से जोवन के बनाव से (प्रसन्न) शशि-वदनी प्रवीण नायक के हाथ की वीणा की भनकार को सुनकर एवं छिपी हुई गलियों को देखकर हया और डर से लीन (तन्मय) होकर शीघ्रता से छिपकर चली ।

† बिछुवा के अपूर्व स्वर को तथा हृदय को हथेली से दाबती हुई (चली तो), किंतु थोड़ी भी आहट के कारण आते-जाते नहीं बनता है । नायिका जेठियों के सकुच-वश अपनी साँसों तक गिनती थी (कि कहीं जोर से साँस न निकल जाय), तथा किंकिणी की भनकार से भौंह उठकर तन जाती थी ।

इंदीवर❀-नैनी इंदु-सुखी सुधा-बिंदु-हास,
 इंदिरा-सी सुंदरि गुब्बिंद-चित-चाह-सी ;
 नेननि उनैसी† लाज सैननि सुनैसी काज,
 चैननि चनैसी‡ नाह सोहैं बहूँ ना हसी§ ।
 प्रीति भीति प्रगट प्रतोति रीति गुपित,
 दिपति पति दीपति छिपति छबि माह सी ;
 आगे-आगे आनन अनूप को उज्यारो रूप,
 पाछे-पाछे प्यारो लग्यो डोलै परछाह-सी ॥ २४१ ॥

स्वकीयात्व की मुख्यता है ।

सोहैं = सामने । सैननि सुनैसी काज = संकेतों से ही काम समझ लेनेवाली । दिपति पति दीपति = पति के प्रकाश से स्वयं प्रकाशित होती है । छबि माह = छवि में ।

प्रानपती के प्रभात पयान प्रभाकर कोटि हुतो प्रतिकूल-सो ,
 रै हैं क्यों प्रान प्रलै पहिले दिन दूसरो दौस दसा दुख-मूल-सो ;
 नेह रच्यो बिरहागि तच्यौ प्रिय-प्रेम पच्यौ पजरै तन तूल-सो ,
 सासनि दूखिउसासनि रुखि गयो मुख सूरख गुलब के फूल-सो ।
 प्रवत्स्यत्यतिका नायिका का वर्णन है । दूखि = दूषि; दोष लगाकर ।
 सबेरे प्राणेश्वर का चलना है, सो करोड़ सूर्य झिलाफ हो गए,
 अर्थात् इतना संताप हुआ, जितना करोड़ सूर्यों की शत्रुता से होता ।

❀ कमल ।

† घिरी ।

‡ चुनकर एकत्र करे ।

§ पति के सामने कभी हँसी भी नहीं ।

पहले ही प्रलय-समान दिन को प्राण क्योंकर रहेंगे (और यदि किसी भाँति रहे भी), तो दूसरे दिन की दशा दुख-मूल के समान होगी । अंतिम दोनो पद उत्कृष्ट हैं ।

खरी दुपहरी हरी भरी फरी कुंज मंजु ,

गुंज अलि-पुंजनि की देव हियो हरि जाति ;

सीरे नद-नीर तरु सीतल गहीर छाँह ,

सोवैं परे पथिक पुकारैं पिकी करि जाति ।

ऐसे मैं किसोरी भोरी कोरी कुम्हिलाने मुख

पंकज से पाय धरा धीरज सों धरि जाति ;

सौँहे घाम स्याम मग हेरति हँथेरी ओट ,

ऊँचे धाम बाम चढ़ि आवति उत्तरि जाति ॥ २४३॥

उत्कंठिता नायिका का वर्णन है । गहीर = गंभीर; घनी । कोरी = अलूती । सौँहे = सामने । मग हेरति = मार्ग की प्रतीक्षा करती है । हँथेरी ओट = हाथ की आड़ । दूर तक देखने को या सूर्य की किरण बचाने को ।

कैधौँ हमारियै बार बड़ो भयो कै रवि को रथ ठौर ठयो है ❀ ,
भोर ते भान की ओर चितौति घरी पल हू गनतौ न गयो है ;
आवत छोर नहीं छिन का दिन को नहिं तासरो याम छयो है ,
पाइए कैसेक साँझ तुरंतहि देखु री दौस दुरंत भयो है ॥ २४४॥

नायिका नायक की प्रतीक्षा करती है । बार = बारी = उसरी । छयो है = व्यतीत (क्षय) हुआ है ।

❀ या तो (दिन) मेरी ही बारी में बड़ा हो गया है, या सूर्य का रथ एक ही स्थान पर रुक गया है ।

आवन सुन्यौ है मनभावन को भावती ने ,
 आँखिन अनंद-आँसू ढरकि-ढरकि उठै ;
 देव दृग दोऊ दौरि जात द्वार-देहरी लौ ,
 केदरी-सो साँसै खरो खरकि-खरकि उठै ।
 टहलै करति टहलै न हाथ-पाँय, रंग-
 महलै निहारि तनो तरकि-तरकि उठै ;
 सरकि-सरकि सारी, दरकि-दरकि आँगी ,
 औचक उचौहैं कुच फरकि-फरकि उठै ॥२४५॥

भावती = प्रिया । खरी = तीक्ष्ण । खरकि-खरकि = गले से आवाज़ निकलना (श्वासोच्छ्वास) ; यह 'खड़ाका'-शब्द से बना है । टहलै करति टहलै न हाथ-पाँय = गृह-काज करने में हाथ-पैर स्तब्ध हो जाते हैं, अर्थात् मिलन की उमंग से गृह-काज में जी नहीं लगता । औचक = अकस्मात् । उचौहैं = उभरे हुए ।

धाई खोरि-खोरि ते बधाई पिय आवन की,
 सुनि-सुनि कोरि-कोरि भावनि भरति है ;
 मोहि-मोरि बदन निहारति बिहार-भूमि,
 घोरि-घोरि आनँदवरी-सो उघरति है ।
 देव कर जोरि-जोरि बंदत सुरन गुरु-
 लोगनि के लोरि-लोरि पायन परति है ;
 तोरि-तोरि माल पूरै मोतिन की चौक,
 निवछावरि को छोरि-छोरि भूषन धरति है ॥२४६॥

आगतिका नायिका का वर्णन है । वीप्सा की बहार है ।

खोरि-खोरि = गली-गली से । कोरि-कोरि रस = करोड़ों प्रकार के रस । लोरि-लोरि = लोट-लोट करके । घोरि-घोरि = घुल-घुलकर ।

प्रान-से प्रानपती सों निरंतर अंतर अंतर पारत हे री,
देव कहा कहाँ बाहे रहूँ घर बाहेर हूँ रहै भौंह तरे री;
लाज न लागति लाज अहे तोहि जानी मैं, आज अकार्जनि एरी,
देखन दे हरि को भरि नैन घरी किन एक सरीकिनि मेरी॥२४७॥

मध्या नायिका की लाज का वर्णन है । स्वयं नायिका अपनी लाज को संबोधित करती हुई कथन करती है । अंतर अंतर = अंतःकरण से भेद । बाहे रहूँ घर = घर में तुझे (लाज को) लादे रहती हूँ । बाहेर हूँ रहै भौंह तरे री = बाहर भी मेरी भौंहें तरे (नीचे) रहती हैं । सरीकिनि = साथिन ; संग में रहनेवाली । 'शरीक'-शब्द से बना है ।

साँझ ही स्याम को लेन गई सु बसी बन में सब जामिनि जायकै,
मीरी बयारि छिदे अधरा उरभो उर भाँखर भार भँभायकै;
तेरीसि को करिहै करतूति हुती करिबे सुकरी तैं बनायकै,
भोर ही आई भट्ट इत मो दुखदाइनि काज इतो दुखपायकै ।

अन्यसं भोगदुःखिता नायिका का वर्णन है ।

दुखदाइनि काज = मुझ दुःख देनेवाली के निमित्त (नायिका के निमित्त) ।

आजु मिले बहुतै दिन भावते भेंटत भेंट कछू मुख भाखौ ,
ये भुजभूषन मो भुज बाँधि भुजा भरिकै अधरा-रस चाखौ :

लींजिए लाल उढाय जरी पट क जिए जू जिय जो अभिलाखौ ,
प्यारे हमैं तुम्हैं अंतर पारत हार उतारि इतैं धरि राखौ ॥२४६

इस छंद में गणिका का वर्णन तो है ही, पर प्रौढ़ा खंडिता का भी अर्थ निकल सकता है। हे दिन-भावते (दिन में, न कि रात में मिलनेवाले), आज बहुत ही मिले। भुज-भूषण वास्तव में न थे, वरन् अन्य नायिका के भुज-भूषण आलिंगन के कारण नायक के भुजों में गड़कर अंकित थे, सो नायिका उनका इशारा करती हुई उनके पाने की प्रार्थना करके व्यंग्य से कोप दिखलाती है। अन्य नायिका का जरी पट पीत पट से भ्रम-वश बदल आया था, जिसका इशारा है। हार भी वास्तविक नहीं है, वरन् अन्यत्र के आलिंगन से उपटा हुआ है।

गणिका-वर्णन। भावते = हे प्यारे ! भेंट = उपहार। भुज-भूषण = बजुल्ला आदि भुजाओं पर पहनने के भूषण।

आजु गई हुती कुंजन लौं बरसे उत बुंद घने घन घोरत॥
देव कहै हरि भीजत देखि अचानक आइ गए चित चोरत ;
पोटि भट्ट तट ओट बटो के लपेटि पटी सों कटी पटु छोरत ,
चौगुनो रंग चढो चित मैं चुनरी के चुचात लला के निचोरत।

गुप्ता नायिका का वर्णन। भट्ट = स्त्री (संबोधन-प्रयोग, प्रेम से संबोधित करना)। पोटि = पुटया (पुचकार) कर। ओट बटो = वट-वृक्ष की आड़ में। पटी = पट, वस्त्र। पटु = वस्त्र (पट्टा)।

॥ घोरते (गरजते) हुए घन (मेघ)। घोरना देशस्थ शब्द है, जिसका अर्थ सोने में गले के बोलने का है।

खोरि मैं खेलत पीठि दिए तऊ नेह कि डीठि छुटै नहिं छूटी ,
 देव दुहूँ को दुहूँ छलु पायो सु कौलमुखी लखे नौल बधूटी॥
 क्यों बिसरै निसरै मन ते ब्रजजीवन की निजुं जीवन-बूटी ,
 बाल के लाल लई चिहुँटी रिम के मिस लालभाँ बाल चिहुँटी ।
 वर्तमान गुप्ता नायिका का वर्णन है। खोरि = छोटी गली ।
 कौल = कमल । नौल = नवल; नवीन । ब्रजजीवन = ब्रज के जीवन
 (कृष्ण) । चिहुँटी = चिपट गई ।

(२८)

उद्धव-संवाद

ऊधो आए ऊधो आए, स्याम को सँदेसो लाए,
 सुनि गोपी-गोप धाए धीर न धरत हैं ;
 चौरी लगि दौरीं नठि भौरीं† लौं भ्रमति मति ,
 गनति न ताऊ गुरु लोगनि डरति हैं ।
 है गई बिकल बाल बालम-बियोग-भरीं ,
 जोग की सुनत बात गात यों जरत हैं ;
 भारी भए भूषन सँभारे न परत अंग ,
 आगे को धरत पग पाछे को परत हैं ॥२५२॥
 चौरी लगि = चबूतरे के पास । ताऊ = पिता का बड़ा भाई ।

॥ कमल-वदनी नव-वधू के देखने से दंपति ने एक दूसरे का छल जान लिया ।

† सुस्था करके ।

† भौरी (काठ का खेलवाला यंत्र) के समान उनकी बुद्धियाँ भ्रमती हैं । वे न तो ताऊ को गिनती हैं, न (अन्य) गुरुजनों को डरती हैं ।

छाँड़-यो सुख-भोग मान खाँड़-यो गुरुलोगनि को,
 माड़-यो हम योग या वियोग के भगल मैं ;
 चेली कै सहेली बन डोलति अकेली गहि ,
 मेली भुज बेली और सेली है न गल मैं ।
 देव पहिले ही पाइ फारि चितु फार-यो हितु ,
 फारखती चाहैं कान्ह फारिबो अगल मैं❀;
 नाथ सों सँदेसो सूधो आदेस कहै को ऊधो,
 अलख जगावैं दाबैं कूबरी बगल मैं ॥२५३॥

गोपियाँ अपनी विरक्त दशा का वर्णन उद्धव से करती हैं ।

खाँड़-यो = खंडित किया । मान = प्रतिष्ठा । माड़-यो = मंडित किया, सँवारा । भगल = छल । मेली = पहनी । ही = हृदय । फारखती (फारिग खती) = लिखा-पढ़ी करके इलाहिदा होना । अलग = पृथक् । आदेस = फक्कीरी आज्ञा । अलख = अदृष्ट, ईश्वर । फक्कीर लोग भिन्ना माँगते में अलख-अलख कहा करते हैं ।

जोगहि सिखैहैं ऊधौ जो गहि कै हाथ हम ,

सो न मन हाथ ब्रजनाथ साथ कै चुकीं ;

❀ देव कवि कहता है, हम गोपियों ने पहले ही भगवान् को चित्त फाड़कर पाकर अपना (कुटुंबियों से) प्रेम फाड़ डाला, किंतु भगवान् हमसे फारखती चाहते हैं, जिस फारखती को हम पार्थक्य में फाड़ेंगे, अर्थात् फारखती को कायम न रखेंगी ।

† छंद का प्रयोजन यह है कि हम गोपियाँ भी वियोग ही को प्रेम-पूर्ण योग मानती हैं, सो हमें अन्य यौगिक क्रियाओं की आवश्यकता नहीं । स्वयं भगवान् बगल में कूबरी दाबकर अलख जगावें ।

दव पचसायक नचाई खोलि पंचन मैं ,
 पंचहूकरनि पंचामृत सो अचे चुकीं॥
 कुल - बधू हूँ कै हाय कुलटा कहाई, अरु
 गोकुल मैं, कुल मैं कलंक सिर लै चुकीं ;
 चित होत हित न हमारी नित ओर, सोतौ
 वाही चितचोरहि चितौत चित दै चुकीं॥२५४॥

कै चुकीं=कर चुकीं । पंचहूकरनि=पंचभूत के भागों का मिलना (सृष्टि-प्रकरण का एक सिद्धांत) । पंचीकरणविधि । एक-एक तत्त्व के पाँच-पाँच भाग होकर कपिल का सांख्यशास्त्र बना है । उसी को पंचीकरण कहते हैं ।

अंजन सों रंजित निरंजनहि† जानै कहा ,
 फीको लगे फून रम चाखे ही जु बौड़ी को\$;

॥ हमें कामदेव ने प्रकट रूप से पंचों में नचाया है, और पंचीकरण विधि को हम पंचामृत के समान पी चुकी हैं ।

† हमारी ओर नित्य न तो चित्त होता है न हित, क्योंकि हम वह चित्त देखते ही उस चित्तचोर को दे चुकी हैं । यह भी अर्थ है कि हित चित्त में होता है, किंतु वह चित्त हमारी ओर नहीं है ।

‡ निगुण ब्रह्म को । अंजन का आँखों से हटाना ।

\$ जो अंजन से सुशोभित हैं वे निरंजन को (ईश्वर को, अंजन के अलग करने को) क्या जानें, क्योंकि जिसने बौड़ी (अंगूर केमद) को पान किया है, उसे पुष्प-रस फीका लगेगा ही । प्रयोजन यह है कि जो राग में रत है, वह राग छोड़कर ईश्वर में कैसे मन लगावे, क्योंकि वह राग अध्यात्मज्ञान से श्रेष्ठतर भी है । भाव यह है कि भक्ति ज्ञान से उत्तर है ।

तुरज* बजाय सूर सूरज को बेध जाय,
 ताहि कहा सबद सुनावत हौ डौड़ी को† ।
 ऊधो पूरे पारखी हौ परखे बनाय देव ।
 वार ही‡ पै बोरो पै रवैया धार औड़ी\$ को;
 मनु मनिका+ दै हरि-हीरा गाँठि बाँध्यो हम,
 तिन्हैं तुम बनिज बतावत हौ कीड़ी को ॥२५५॥

ऊधो का वर्णन है । अंजन = काजल; अध्यात्म अर्थ में माया ।
 रंजित=भूषित । परखे बनाय = भली भाँति परखे गए हो ।

जो न जीमै प्रेम तब कीजै ब्रत-नेम, जब
 कंज-मुख भूलै तब संजम बिसेखिए ;
 आस नहीं पी की तब आसन× ही बाँधियत,
 सासन कै सासन को मूँदि पति पेखिए ।

* तुरही ।

† जो सूर (युद्ध-वीर) तुझी बजाकर सूर्य-मंडल को बेध जाता है (युद्ध में प्राण भी दे सकता है), उसे डौड़ी (दिठोरा) के शब्द से कैसे डराया जा सकता है, क्योंकि जब उसे मरण का भी भय नहीं, तब साधारण डौड़ी का भय क्या होगा ?

‡ इसी किनारे पर ।

\$ तिरछी, उलटी ।

+ गुरिया, जवाहरात का टुकड़ा ।

× योग के ८४ आसन ।

नख ते सिखा लौं सब स्याममई बाम भई,
 बाहर लौं भीतर न दूजो देव देखिए ;
 जोग कर मिलैं जो बियोग होय बालम, जु
 ह्याँ न हरि होयँ तब ध्यान धरि देखिए ॥२५६॥

सासन कै सासन को = श्वासों पर आज्ञा चलाकर, अर्थात् श्वासों को स्ववश करके । प्राणायाम पर उक्ति है ।

कुबिजा कितेव दुबिजा के रहे आप देव,
 अस अवतारी अब तारी जिन गनिका❀;
 आरति न राखत निवारत नरक ही ते ,
 तारत तिलोक चरनोदक की कनिका ।
 उनके गुनानुवाद तुमसों सुने हैं ऊधो ,
 गोपिन को सूधो मत प्रेम की जवनिका;
 कुंजन मैं टेरिहैं जू स्याम को सुमिरि नीके ,
 हाथ लै न फेरिहैं सुमिरिनी के मनिका ॥ २५७ ॥

कितेव = धूर्त; छल करनेवाले (यह 'कितव'-शब्द से बना है) ।
 दुबिजा = दुरगगी, जारजा । कनिका = कण । जवनिका = नाटक का परदा । सुमिरिनी = छोटी माला ।

कंसरिपु अंस अवतारी जदुबंस कोई,
 कान्ह सों परमहस कहै तौ कहा सरो ;

❀ कैतव (छल) करके दुरगगी कुब्जा के यहाँ अंशावतारी स्वयं वह भगवान् अब रहे, जिन्होंने गणिका को तारा ११ ।

हम तौ निहारे ते निहारे ब्रजवासिन मैं,
 देव मुनि जाको पचि हारे निसि-बासरो ।
 भ्रम न हमारे जप संजम न करें कछू,
 बहि गयो जोग जमुना-जल बिलासरो ;
 गोकुल गोसायनि परम सुख-दायनि,
 श्रीराधा ठकुरायनि के पायनि को आसरो ॥२५८॥
 कहा सरो = क्या हुआ । पचि हारे = परिश्रम करते-करते हार गए
 (थक गए) । निहारे ते निहारे = गौर करके देखने से दृढ़ता-पूर्वक देखा ।

(२६)

देश-जाति

छिति कैसी छोनी रूप-रासि की पकोनी गढ़ि
 गढ़ी बिधि सोनी गोरी कुंदन-से गात की ;
 देव दुति दूनी-दूनी दिन-दिन होनी और
 ऐसी अनहोनी कहुँ कोई दीप सात की* ।
 रति लागै बौनी जाकी रंभा रुचि पौनी लोच-
 ननि ललचौनी मुख-जोति अवदात की ।
 इंदिरा अगौनी इंदु इंदीवर बौनी† महा-
 सुंदरि सलौनी गज-गौनी गुजरात की ॥२५९॥

* देव कहता है कि गुजरात-वधू की दूनी-दूनी कांति नित्य ही बढ़ती है, यहाँ तक कि सातों द्वीपों (की नायिकाओं) में और कहीं ऐसी नहीं होनी है ।

† चंद्रमा में कमल बोनेवाली, अर्थात् यदि चंद्र की उज्ज्वलता में कमल की कोमलता मिलाइए, तो उसके मुख की समता हो । लक्ष्मी उससे इतनी हेय है कि उसकी अगवानी को खड़ी रहती है ।

प्रतीपकी मुख्यता है।

छिति = पृथ्वी। छोनी = लड़की। (पृथ्वी की अर्थात् जानकी)।
 पकोनी = पकी हुई। सोनी = सुनार (स्वर्णकार)। बौनी =
 बावन अंगुल की स्त्री। पौनी = तीन चौथाई; हीनता से अभिप्राय है।
 अगौनी = अगवानी (पेशवाई)। गज-गौनी = गज-गामिनी।
 अवदात = शुभ्र।

जोबन के रंग-भरी ईंगुर-से अंगनि पै,
 एँड़िन लौं आँगी छाजै छविन की भीर की ;
 उचके उचोहैं कुच भूपे भलकत भीनी
 भिलमिली ओढ़नी किनारीदार चोर की।
 गुलगुले गोरे गोन कोमल कपोल, सुधा-
 बिंदु बोल इंदु-मुखी नासिका ज्यों कीर की ;
 देव दुति लहराति छूटे छहरात केस ,
 बोरो जैसे केसरि किसोरी कसमीर की ॥२६०॥

काश्मीर देश की युवती का वर्णन है।

छाजै = शोभै। कीर = तोता।

तिनिहू लोक नचावति ऊक मैं मंत्र के सूत अभूत गती है* ,
 आपु महा गुनवंत गुसायनि पायनि; पूजत प्रानपती है ;

* टूटते तारे की एक प्रकार की जादू करके वह तीनो लोकों को नचाती है। ऊक का कोशस्थ अर्थ उल्का है। इसे जादू के मंत्रों के संबंध का छू के समान ध्वन्यात्मक शब्द भी मान सकते हैं। प्रयोजन यह बैठेगा कि भानमती की जादू-पूर्ण ध्वनियों से तीनो लोक नाचते हैं।

पैनी चितौनि चलावति चेटक को न कियो बस जोगि-जती है,
कामरू-कामिनि काम-कला जग-मोहनि भाभिनि भानमती है ॥

कामरू (आसाम) देश की जादूगरनी का वर्णन है ।

ऊक = उल्का ; टूटता तारा । अभूत = जो पहले न हुआ हो ,
अद्भुत । भानमती = जादूगरनी । चेटक = जादू ।

पातरे अंग उड़ै बिन पंखन कोयल-बानि चवानि बिरी की ,
जोबन रूप अनूप निहारि कै लाज मरै निधिराज सिरी की ;
कौल-से नैन कलानिधि-सो मुख कोटि कलागुन की गहिरी की॥
बाँस के सीस अकास पै नाचात कोन छक्यो छबिसोनचिरीकी ।

नट की स्त्री (नटिनी) का वर्णन है । बिरी = बीड़ा । निधिराज =
कुबेर । सिरी = श्री = लक्ष्मी । सोनचिरी = सोने की चिड़िया, अर्थात्
नटिनी । लाज मरै निधिराज सिरी की = राज्य-श्री की निधि लाज
से मरती है; अथवा उसे देखकर कुबेर की लक्ष्मी की लाज मरे
(भंग हो) ।

माखन-सो मन दूध-सो जोबन है दधि ते अधिदै उर ईंठी ,
जा छबि आगे छपाकर छाँछ बिलोकि सुधा बसुधा सब सीठी ;
नैनन नेह चुवै कहि देव बुझावति बैन बियोग अँगीठी ,
ऐसी रसीली अहीरी अहो ! कहो क्यों न लगे मनमौहनै मीठी ।

अहीरिन (ग्वालिन) का वर्णन है । ईंठी = इष्ट । सीठी =
फीकी ।

॥ उस गुण-गंभीरा की करोड़ कलाएँ हैं ।

ज्यों बिन ही गुन अंक लिखै घुन यों करिकै करता कर मारयो॥
 वारिए कोरि सची रति रानी इतो खतरानी को रूप निहारयो ;
 देव सुवानक देखि अचानक आनकहूँ को आन क मारयो† ,
 लाज लचै तिय आन रचै तौ पचै बिन काजबिरंचिबिचारयो‡ ।
 कोरि=कोटि=करोड़ ।

देव दिखावति कंचन-सो तन औरन को मन तावे अगोनी ,
 सुंदरि साँचे में दै भरि काढ़ी-सि आपने हाथ गढ़ी बिधि सोनी ;
 सोहति चूनरि म्याम किसोरी कि गोरी गुमान-भरी गज-गोनी ,
 कुंदन लीक कसौटी में लेखीसि देखी सु नारि सुनारि सलोनी ।

⊗ जैसे विना अक्षर लिखने का ज्ञान रखते हुए भी घुन कभी-कभी काटते-काटते कोई अक्षर बना जाता है (जिसे घुणाक्षर-न्याय कहते हैं), उसी प्रकार अन्यो को बनाते-बनाते विना खतरानी-सी रूपवती बनाने की शक्ति रखते हुए ब्रह्माजी अकस्मात् उसे बनाकर ऐसे प्रसन्न हुए कि आगे ऐसा रूप बना सकने में अपने को असमर्थ पाकर तथा उससे बुरा रूप बनाने में लज्जा बोध करके उन्होंने अपने हाथ ही झाड़ दिए (वह निर्माण-कार्य से निवृत्त हो गए) ।

† देव कवि कहता है कि (ब्रह्मा ने) खतरानी की अच्छी बनक अकस्मात् देखकर लाए जानेवालों का आनना (लाना) बंद कर दिया (आगे से सृष्टि-रचना ही छोड़ दी, जिससे संसार में पैदा होनेवालों का पैदा होना नष्ट हो गया) ।

‡ यदि बेचारा ब्रह्मा और स्त्री बनावे, तो वह लज्जा से झुक जाय, अथच अनावश्यक कष्ट उठावे (क्योंकि खतरानी के समान रूपवती उससे अन्य रामा बन ही नहीं सकेंगी) ।

जाति (सुनारिन) का वर्णन है । तावै=तपावै । बिधि-
सोनी=ब्रह्मा-स्वर्णकार ने । अगोनी=ऐसी स्त्री, जो गौने नहीं गई
है । अगोनी अगोठी को भी कहते हैं । प्रयोजन यह है कि अगोनी में
औरों का मन तपाती है ।

एँड़िन ऊपर घूमत घाँघरो तैसिए सोहति सालू कि सारी ,
हाथ हरी-हरी छाजै छरी अरु जूती चढ़ी पग फूँद फुँदारी ;
ऊँचे उरोज हरा घुँघचीन के हाँ कहि हाँकति बैल निहारी ,
गात नहीं दिखराय बटोहिन बातन हीं बनिजै बनिजारी ॥२६६॥

बनजारी-जाति की स्त्री का वर्णन है । सालू=लाल कपड़े से
प्रयोजन है । बनिजै=खरीदती है । छाजै (छाजना)=शोभा
देती है ।

साँची सुधा-बुंदन सों कुंदन की बेलि, किधौं
साँचे भरि काढ़ी रूप ओपनि भरति है ;
पोखी पुखरागन बपुख नख सिख कर
चरन अधर बिद्रुमन ज्यों धरति है ।
हीरा-सी हँसनि मोती-मानिक-दसन स्वेत ,
श्यामता लसनि दृग हियरा हरति है ;
जोबन जवाहिर सों जगमग होइ, जोइ
जौहरी की जोइ जग जौहर करति है ॥ २६७॥

जौहरी की स्त्री का वर्णन है । उसी प्रकार रत्नों के कथन हैं । बपुख
(वपुष्)=शरीर । बिद्रुमन=प्रवालों = मूँगों । श्यामता =
कालापन । यहाँ नीलम-मणि-रूपी आँखों की श्यामता से प्रयोजन
है । जोइ (जाया) = स्त्री ।

अरगजे भीजी मरगजे बागे बनी ठनी ,
 हाट पर बैठी अति ही सुघरपन सों ;
 इंदु-से बदन मृगमद - बुंद बेंदी भाल ,
 झलक कपोल गोल दूने दरपन सों ।
 मैन - मद छाके नैन देव मुनि मोहैं सैन ,
 सोंहैं सटकारे बार कारे सरपन - सों ;
 बंधु किए मधुप मदंध किए बंधु जन ,
 बँध्यो मन गंधी की सुगंध-भरपन सों ॥ २६८ ॥

मृगमद = कस्तूरी । मैन-मद = मयन अर्थात् काम के मद में ।
 मरगजे = मले । सुघरपन = चतुराई । बंधु किए मधुप = भौरों को
 बंधु (बँधुआ = कैदी) किया । सुगंध के वश हो भौरों वहीँ ठहर
 गए । बागे = पहनने का कपड़ा । दूने दरपन सों = दर्पण से
 दूने चमकनेवाले । भरपन सों = भरपटों से । सैन = आँखों का
 इशारा ।

दंपति एक ही सेज परे पग पींडुरी दाबि दुहूँ को रिक्तावति ,
 आपने ओछे उठाहैं कठोर उरोजन को मलै एँड़ी मिलावति ;
 भौहैं उमेठि रहैं ठकुराइनि ठाकुर के उर काम जगावति ,
 लौँड़ी अनोखी लड़ाइते लाल की पाँय पलोटेँ कि चोटै चलावति ।

तिल है अमोल लोल - नैनी के कपोल गोल ,
 बोलत अमोल जन बारि फेरियत है ;
 लोभा सुने जाकी कवि देव कहै कौन को न
 होत चित चीकनो चतुर चेरियत है ।

घाट बाट हूँ में घट निपट बटोहिन के ,
 नेक ही निहारे नेह - भरे हेरियत है ❀ ;
 सरस निदान ताके दरस की कौन कहे ,
 पौन हूँ के परस परोसी पेरियत है† ॥ २७० ॥
 तेलिन का वर्णन है । बारि फेरियत है = पानी फेरते हैं, अर्थात्
 नज़र उतारते हैं । निदान = आदिकारण । पौन = पवन ।

❀ राहगीरों के हृदयों को तेरे थोड़ा ही देखने से हम खूब स्नेह-
 पूर्ण पाते हैं ।

† कोल्हू तो सरसों आदि को दबाकर पेरता है, किंतु तेलिन
 पड़ोसियों को अपनी वायु के स्पर्श-मात्र से पेर डालती है ।

अधिक अभेद रूपक के भाव की झलक है ।

विनीत वक्तव्य ❀

भारतीय भूपालों में सर्वश्रेष्ठ, सहृदय हिंदी-हितैषी, काव्य-कला के कुशल पारखी, भारतीय भाषाओं की महारानी मंजु-मधुर ब्रजबानी के परम प्रेमी, देव-पुरस्कार के प्रसिद्ध प्रदाता श्री सवाई महेंद्र महाराजा श्रीवीरसिंहजू देव ओरछाधिपति की सेवा में—

धन्यवाद

मम कृति दोस-भरी खरी, निरी निरस जिय जोइ—
है उदारता रावरी, करी पुरसकृत सोइ ।

×

×

×

• मधु मिलन

सुधाजनक जुग-मधु-मिलन सुमन-खिलन मधु माहिं;
उर-उपबन मैं सुरस - कन सुख-सौरभ सरसाहि ।

×

×

×

ब्रजबानी

बर ब्रजबानी - पदुभिनी प्राचि-ओरछा - ओर—
लखि तमहर प्रिय बीर-रवि खिली पाइ सुख-भोर ।
ब्रजबानी-घन-प्रगति-घन देस-गगन-बिच छाइ—
दियौ दयालु' महेंद्रजू जन-मन मोर नचाइ ।

×

×

×

❀ ओरछा में, वीर-वसंतोत्सव के वक्त, दुलारे-दोहावली पर देव-पुरस्कार प्राप्त कर लेने के उपरांत, पुरस्कार-प्रदाता को, दोहावलीकार द्वारा दिया गया धन्यवाद ।

† ओरछाधिपति की ७॥ वर्ष की कन्या और उसी उम्र की सुधा-पत्रिका । •

आलोचकों के प्रति

संतत मद हूँ तैं अधिक पद कौ मद सरसाइ ;
बाहि पाइ ❀ बौराइ, पै याहि पाइ † बौराइ ।

तो भी

जे पद मद को छाकु छकि बोले अटपट बैन,
सोऊ सुजन कृपा करैं, भरैं नेह सौं नैन ।

×

×

×

अंतिम प्रार्थना

नेह - नेह दै जां दियौ साहित - दियौ जगाइ,
सतत भर्यौई राखियौ, जगत जोति जगि जाइ ।

श्रीमान् का प्रेम-पूर्वक प्रदत्त यह प्रसिद्ध पुरस्कार प्राप्त करके मैं अपने को गौरवान्वित समझता और इसके लिये श्रीमान् को सादर धन्यवाद देता हूँ । किंतु श्रीमान् को विदित ही है कि मेरा तो सर्वस्व ही सरस्वती माता पर न्यौछावर है । फिर यह बानी देवी का प्रसाद तो खास तौर पर उन्हीं को समर्पण होना चाहिए । अतएव मैं आज इस पुरस्कार को भी सहर्ष एक ऐसी शुभ साहित्यिक सेवा में लगाने को उद्यत हूँ, जिसकी आवश्यकता का अनुभव सुदीर्घ समय से सभी सहृदय साहित्यिक सज्जन — कृतविद्य कवि-कोविद कर रहे होंगे । श्रीमान् का दिया हुआ यह धन मैं श्रीमान् के ही नाम से—वसंत-पंचमी‡ के शुभ दिन को अगार करने के लिये—नवीन और प्राचीन

❀ पाठांतर सेइ ।

† पाठांतर लेइ ।

‡ वसंत-पंचमी के ही दिन मेरा जन्म हुआ, मेरी प्यारी गंगा-पुस्तकमाला का और गंगा-फाइनआर्ट-प्रेस का जन्म भी उसी दिन हुआ, तथा वसंत-पंचमी को ही मैं उस स्वर्गीय आत्मा से भी एक किया गया था, जिसके नाम से मैं गंगा-पुस्तकमाला को गूँथ रहा हूँ ।

काव्य-पुस्तकों के प्रकाशन में लगाना चाहता हूँ। पुस्तक-रूप में इतनी ही संपत्ति मैं अपनी ओर से भी इसमें सम्मिलित करके एक पुस्तक-माला 'देव-सुकवि-सुधा' नाम से, ४,०००) के मूल-धन से, प्रकाशित करूँगा। देव-पुरस्कार की रकम से जो माला चलाई जाय, उसमें देव-शब्द संयुक्त होना तो ठीक है ही, सुधा-शब्द भी स्पष्ट कारणों से समीचीन है। आशा है, सहृदय साहित्य-संसार को भी यह नाम बहुत सार्थक—समुचित समझ पड़ेगा। अस्तु। इस पुस्तकावली का प्रबंध एक परिषद् द्वारा होगा, जिसमें अनेक सदस्य रहेंगे। इनका निर्वाचन बाद में हो जायगा। मेरी इच्छा है कि श्रीमान् सवाई महेंद्र महाराजा साहब स्वयं इसके सभापति रहें, और मैं मंत्री के रूप में सेवा करूँ। आशा है, श्रीमान् मेरी यह सांजलि समभ्यर्थना स्वीकार करके मुझे इस संपत्ति को इस शुभ कार्य में लगाने का आदेश देंगे। समिति को या मुझे अधिकार होगा कि किसी सुप्रसिद्ध साहित्यिक संस्था को यह सारी संपत्ति, जब समुचित समझे, समर्पित कर दे।

टीकमगढ़
वसंत-पंचमी, १९६१ } दुलारेलाल

देव और बिहारी के तुलनात्मक छंदा का चक्र

(देव-बिहारी-सुधा से)

विषय	देव	बिहारी
भक्ति	८ (वंदना)	१०
सिद्धांत	१५	१७ (नीति-शिक्षा)
स्फुट	१६ (विविध वर्णन)	१६
युगल-वर्णन	३ (१३७, १३८, १४१) दर्शन-मिलन से	३
स्नान	२ (१५, २३) + ३ राग	३
आश्रयदाता	१ (४१)	१
प्रेम	४०	४
उच्च विचार	४ (मत से)	४
मान व परिहास	३ + ५ (मन से)	१०
मान-मर्दन (अपमान)	४ (दर्शन-मिलन से)	५
विनोद	५	२ शराब + हँसी दिल्लगी
चंद-चाँदनी	४	५
पवन	६	५
अग्नि, दीपादि	३ (प्रेम से)	३
चित्र	३	२ रंग
नख-शिख, रूप	१८	१८
नेत्र, दृष्टि	१६ (प्रेम से)	२०
रास	४	५ (स्पर्श)
अलंकार	उपमा-रूपकादि १७ + काव्यांग २० शाब्दिक सामंजस्य ५ + प्रकृति ५ संचित ६ + उपालंभ ११=६४	६७
ऋतु	१८ (पावस, हिंडोरा, वसंत, फाग)	१५
नायिका-भेद	२६ (उद्धव, देश, सखी)	२०
खंडिता	४	६
विरह	१६	१६

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४	२३	बक	बंक
२६	२, ३	कछ्छ, गनाव	कछ्छु गनावै
३६	४	लोकल जावै	लोक लजावै
३८	१६	मनु	ननु
४८	२०	घुमता	घूमता
४६	७	प्रमाद	प्रमोद
५४	१	विनोक	विनोद
५५	१५	तसेई	तैसेई
६१	७	फूँदै	फूँदै
६२	५, १८	फँकि, गन	फूँकि, गनै
६३	१६	सुंरद	सुंदर
६५	१७	बरै	बीरै
६७	२	बिलाकि	बिलोकि
७१	२	पकज	पंकज
७५	११	मे	मेलि
७७	५	कोने	डीले
८२	२३	चप	चोप
८५	८	बिब्बाक	बिब्बोक
८७	४	बितक	बितर्क
९०	१८	अत पर	अतः पर
९१	८	सधा	सुधा
९४	११	बसीसी	बसीसी। १२४ (अ)।
९५	१२	दाना	दोनो

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६६	१६	तारि	तोरि
१०१	३	तीन मात्राएँ टूट	गई हैं ।
१०१	६, १०, ११	चार मात्राएँ टूटी हैं ।	
१०६	१६	आंचननि	आँचनि
१०६ (१३६)३ (२०)		नायिका	नायिका
११२	१५	माहि	मोहि
१२०	४	बोलि	देखि सुनि बोलि
१२०	१६	बन	बैन
१२७	३	लजहि	लाजहि
१२६	१७	बैठा	बैठी
१३२	४	है	\$नीजन सोहात है
१३७	२१	मरो	मरो
१३६	४, १०	पारना, ल, दव	पारनो, लै, देव
१४४	७, ८	छवौँ, छवै	छुवौ छुवै
१४४	१३, १४	ये पंक्तिबाँ ब्रैकेट में हैं ।	
१४५	६	छाबर	छीबर
१४६	१८	कलांतरिता	कलहांतरिता
१८४	२१	उतजित	उत्तेजित
१५०	६	बड़ाए	बड़ीए
१५५	४	चनै	चुनै
१५६	१	काजिए	कीजिए
१६४	८	अस	अंस

नोट—ऊपर दी हुई कई अशुद्धियाँ केवल मात्रा टूटने की हैं, किंतु यहाँ दे दी गई हैं । संभव है, किसी-किसी प्रति में ये मात्राएँ न टूटी हों, या कोई और टूटी हों । पाठक सँभालकर पढ़ने की कृपा करें ।

मिश्रबंधु

